2.4

सम्पूर्ण

चाणक्य नीति

विश्वविख्यात महापंडित राजनीति, कूटनीति और शासन व्यवस्था में दक्ष आचार्य चाणक्य की नीतियों पर आधारित प्रेरणादायक पुस्तक जिसका अध्ययन करने से व्यक्ति जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सफलता प्राप्त कर

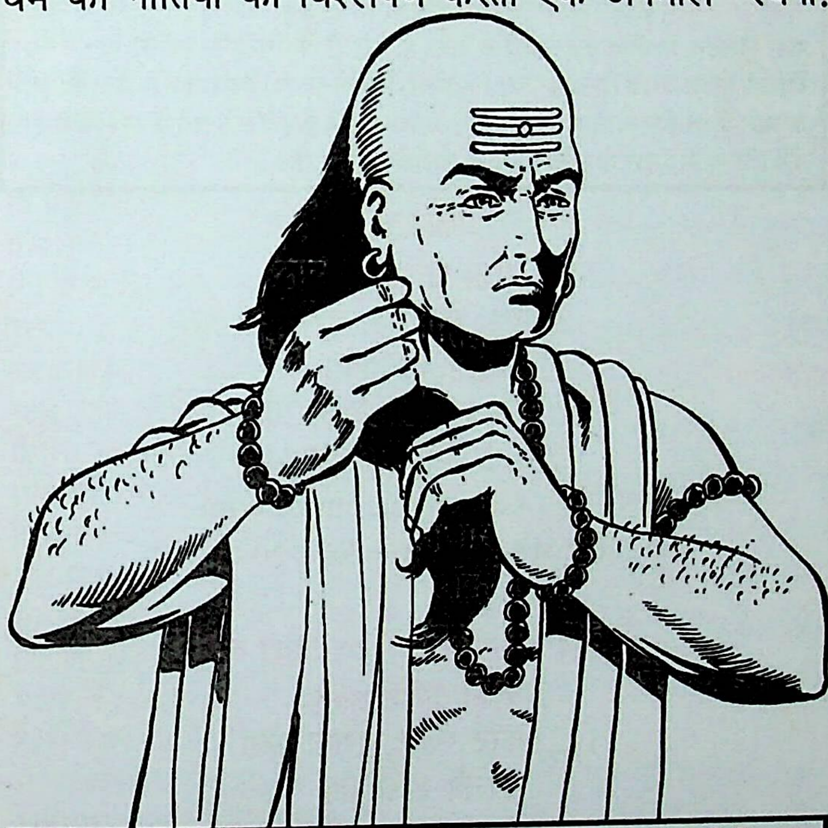
दो कलर में

जिसके पास न विद्या है, न तप है, न दान है और न धर्म है, वह इस मृत्युलोक में पृथ्वी पर भार स्वरूप मनुष्य रूपी मृगों के समान घूम रहा है। वास्तव में ऐसे व्यक्ति का जीवन व्यर्थ है। वह समाज के किसी काम का नहीं है।
—आचार्य चाणक्य

डॉ. शुकदेव त्रिपाठी

सम्पूर्ण
चाणक्य नीति

युगपुरुष 'चाणक्य' द्वारा रचित राजनीति, कूटनीति, समाज और धर्म की नीतियों का विश्लेषण करती एक अनमोल रचना!



'मैं नीति के सिद्धांतों को नीतिशास्त्र के रूप में प्रस्तुत कर रहा हूं। मुझे विश्वास है कि मेरा यह नीतिशास्त्र भविष्य का सत्य सिद्ध होगा।'
'असंभव' शब्द का प्रयोग कायर करते हैं—बहादुर और बुद्धिमान व्यक्ति अपना मार्ग स्वयं प्रशस्त करते हैं।

—आचार्य चाणक्य

राजा पॉकेट बुक्स
330/1, बुराड़ी, दिल्ली—110084

नवीन संस्करण : 2012

● सम्पूर्ण चाणक्य नीति : आचार्य चाणक्य

ISBN : 81-7604-812-7

प्रकाशक :

राजा पॉकेट बुक्स

330/1, मेन रोड, बुराड़ी,

दिल्ली-110084

फोन : 27611410, 27612036,

27612039, 32938774

ई-मेल : sales@rajcomics.com

वेबसाइट : www.rajapocketbooks.com

शोरूम (होलसेल व रिटेल बिक्री केंद्र)

राजा पॉकेट बुक्स

112, फर्स्ट फ्लोर, दरीबा कलां,

दिल्ली-110006

फोन : 23251092, 23251109, 32500860

मुद्रक

दुर्गा ऑफसेट प्रिंटर्स

फेस-4, नं.-82, कुंडली (हरियाणा)

मूल्य : ₹ 80/-

प्रकाशकीय

'चाणक्य नीति' भारतीय इतिहास और संस्कृति की ऐसी अनमोल निधि है, जिस पर हम भारत के नागरिक गर्व से मस्तक ऊंचा करके इस बात को कह सकते हैं कि भारतीय दार्शनिक, चिंतक, विचारक और लेखक यूनान के विद्वानों से किसी भी तरह कम नहीं रहे। लगभग दो हज़ार चार सौ वर्ष पूर्व नालन्दा महाविश्वविद्यालय के आचार्य चाणक्य ने उस काल की व्यवस्था का वर्णन अपनी 'चाणक्य नीति' में किया है, जिसके द्वारा मित्र-भेद से लेकर दुश्मन तक की पहचान, पति-परायण तथा चरित्रहीन स्त्रियों में विभेद, राजा का कर्त्तव्य और जनता के अधिकारों तथा वर्ण-व्यवस्था का उचित निदान हो जाता है। महापण्डित आचार्य चाणक्य की **'चाणक्य नीति'** के सत्रह अध्याय हैं। वे वेदान्त द्वारा निर्दिष्ट मानव के सूक्ष्म शरीर के सत्रह अवयवों——पांच प्राण (प्राण, अपान, व्यान, समान और उदान), पांच ज्ञानेन्द्रियां (नेत्र, श्रोत्र, नासिका, जिह्वा तथा त्वचा), पांच कर्मेन्द्रियां (हाथ, पैर, गुदा, लिंग व वाणी), एक मन, एक बुद्धि (5+5+5+1+1=17) के प्रतीक हैं। इस प्रकार इस ग्रंथ के सत्रह अध्यायों के ज्ञान से मनुष्य के सूक्ष्म शरीर के सत्रह अवयवों का कल्याण होता है।

महात्मा चाणक्य की एक और रचना 'चाणक्य सूत्र' अपने आप में एक महान ग्रंथ है। इस रचना में आचार्य ने एक-एक सूत्र में मानो गागर में सागर भर दिया है। यह रचना न केवल भारत की भावी पीढ़ियों के लिए वरदान है, बल्कि संपूर्ण संसार इसी से अभिभूत है। आचार्य चाणक्य ने अपने छोटे-छोटे सूत्रों में राजा से लेकर जन-साधारण तक के लिए जैसी आचार संहिता बनाई थी, वह आचार्य चाणक्य जैसे किसी अत्यंत निपुण व्यक्ति द्वारा ही संभव थी। चाणक्य के सूत्रों से जो तेज, दृढ़ता, साहस,

आत्म-विश्वास और समाज-सुधार की भावनाएं हमें प्राप्त होती हैं, उनका कोई साक्षी नहीं है। निःसंदेह आचार्य चाणक्य का जीवन-चरित्र अनुकरणीय है। विश्वबंधुत्व का प्रथम सूत्रपात उन्होंने ही किया था। संकट को भांप लेने की उनमें अद्‌भुत शक्ति थी। उनके व्यक्तित्व में कूटनीति की पराकाष्ठा थी। वे स्वार्थ या लालच से कोसों दूर थे। यदि चाणक्य न होते तो चंद्रगुप्त का नाम इतिहास के पन्नों पर न मिलता। चाणक्य अपने आप में एक इतिहास हैं। ढाई गज की मात्र एक धोती पहनने वाले इस ब्राह्मण ने अपने बुद्धि-चातुर्य से न केवल अपना संकल्प पूरा किया, बल्कि विश्व विजय का स्वप्न देखने वाले सिकंदर को भी चंद्रगुप्त के हाथों करारी शिकस्त दिलवाई।

'संपूर्ण चाणक्य नीति' नामक इस पुस्तक में चाणक्य की नीतियों को प्रकाशित किया गया है। जिससे पाठकों को चाणक्य की नीतियों की जानकारी प्राप्त हो सके। साथ ही चाणक्य का संक्षिप्त जीवन परिचय भी दिया गया है। इस बहुमूल्य ग्रंथ का संस्कृत भाषा से हिन्दी भाषा में अनुवाद इस उद्‌देश्य से किया जा रहा है, ताकि साधारण हिन्दी जानने वाले भी इससे लाभान्वित हो सकें। प्रस्तुत पुस्तक में ज्ञान का ऐसा सम्मिश्रण है कि जो एक बार इसका अध्ययन कर लेता है, वह न केवल कार्यक्षेत्र का, बल्कि अपने व्यक्तित्व का समुचित विकास भी कर सकता है।

'राजा पॉकेट बुक्स' से ही एक बड़ी पुस्तक **'सम्पूर्ण चाणक्य नीति, सूत्र व जीवन परिचय'** मात्र 150/- में प्रकाशित की गई है। अगर आपने उसे न पढ़ा हो तो अवश्य पढ़ें।

—**प्रकाशक**

प्रस्तावना

'**चाणक्य**' विश्व प्रसिद्ध ऐतिहासिक चरित्र है। नालन्दा विश्वविद्यालय का आचार्य, महापण्डित चाणक्य अपने समय का एक ऐसा क्रान्तिदृष्टा विचारक और प्रबुद्ध राजनीतिज्ञ था, जो इतिहास को एक नया मोड़ देने की क्षमता रखता था। वह अत्यन्त दूरदर्शी और कुशाग्र बुद्धि का स्वामी था।

ईसा पूर्व चौथी शताब्दी का यह वह काल था, जब भारत के पश्चिमोत्तर इलाके से विदेशी शक्तियां भारत पर आक्रमण कर रही थीं। भारत की विपुल सम्पदा का लालच उन्हें यहां खींचकर ला रहा था। उस समय समस्त भारत छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त था। कोई भी राजा अपने पड़ोसी राजा की सहायता के लिए तैयार नहीं था। सभी अपने-अपने राज्य की सीमाओं में सिमटे, अपनी स्वार्थ-सिद्धि में ही अपनी शक्ति को नष्ट कर रहे थे। एक राष्ट्र की भावना को दूर-दूर तक कोई नहीं जानता था। दूसरे अर्थों में यह भी कहा जा सकता है कि राष्ट्र की भावना को कोई भी पहचानना ही नहीं चाहता था। ऐसे समय में सर्वप्रथम आचार्य चाणक्य ने भारत में एक राष्ट्र की कल्पना की। वे यह बात अच्छी तरह से समझ चुके थे कि जब तक भारत के ये छोटे-छोटे राज्य एक झण्डे के नीचे नहीं आएंगे, जब तक इनके भीतर देशप्रेम की भावना का उदय नहीं होगा, जब तक ये संगठित होकर विदेशी आक्रमणकारी शत्रु का सामना नहीं करेंगे, जब तक एक राष्ट्र के लिए ये अपने तुच्छ और निजी स्वार्थों का परित्याग नहीं करेंगे, तब तक भारत की अखण्डता और अस्मिता को सुरक्षित रख पाना कदापि सम्भव नहीं होगा।

भारत की स्वाधीनता के बाद विभिन्न रियासतों और रजवाड़ों को भारतीय संघ में मिलाने का जो दुष्कर कार्य सरदार

बल्लभ भाई पटेल ने किया था, कुछ वैसा ही दुष्कर कार्य आचार्य चाणक्य ने, आज की परिस्थितियों से सर्वथा विपरीत स्थिति में तब किया था, जब यह कार्य सर्वथा असम्भव समझा जाता था। तब इस प्रकार की कोई कल्पना ही नहीं कर सकता था, परंतु आचार्य चाणक्य ने तब असम्भव को भी सम्भव कर दिखाया था। 'असम्भव' शब्द उनके कोष में नहीं था। बड़ी-से-बड़ी बाधा को वे नगण्य समझते थे।

उस समय विदेशी आक्रमणकारियों में सर्वाधिक शक्तिशाली योद्धा यूनान का राजा सिकन्दर था। सिकन्दर ने जब भारत पर आक्रमण किया तो यहां के कुछ देशद्रोही राजाओं ने अपने स्वार्थ के लिए उसका साथ दिया था, परंतु आचार्य चाणक्य ने पश्चिमोत्तर भारत के कुछ देशप्रेमी राजाओं को संगठित कर आततायी सिकन्दर को जबरदस्त टक्कर दी और चन्द्रगुप्त जैसा एक महानायक देकर अखण्ड भारत की नींव रख दी। चन्द्रगुप्त के नेतृत्व में उन्होंने भारत को एक झण्डे के नीचे संगठित करने का सफल महायज्ञ सम्पन्न किया। यह उन्हीं की कुशल राजनीति का परिणाम था कि सिकन्दर के बाद सम्राट चन्द्रगुप्त से टक्कर लेने का साहस फिर कोई आक्रमणकारी नहीं कर सका। भारत के स्वाभिमान की रक्षा में आचार्य चाणक्य अविचल चट्टान की भांति उठ खड़े हुए थे।

आचार्य चाणक्य को 'कौटिल्य' और 'विष्णुगुप्त' के नामों से भी जाना जाता है। चणक पुत्र होने के कारण उन्हें चाणक्य नाम मिला था और कुटिल राजनीतिज्ञ होने के कारण उन्हें 'कौटिल्य' के नाम से सम्बोधित किया गया। उनको पिता के द्वारा दिया गया वास्तविक नाम 'विष्णुगुप्त' था। कुछ विद्वानों का मत है कि कुटिल गोत्र के वंशज और अर्थशास्त्र ग्रन्थ के प्रणेता होने के कारण चाणक्य को 'कौटिल्य' कहा जाता है।

आचार्य चाणक्य केवल अर्थशास्त्र के ही पंडित नहीं थे, वरन् दूसरे शास्त्रों और शस्त्र-विद्याओं के भी वे पूर्ण विद्वान थे। वे कूटनीतिक योद्धा और असाधारण कोटि के कुशल नीतिज्ञ

सेनापति थे। आचार्य चाणक्य का समस्त जीवन जन-कल्याण की भावना से ओत-प्रोत था। वे महान आदर्शवादी, सामाजिक तथा राजनीतिक मर्यादाओं के प्रतिष्ठापक थे। विद्वानों का तो यहां तक मानना है कि जिन्होंने कौटिल्य के अर्थशास्त्र का अध्ययन नहीं किया, वे राजतन्त्र का सफल संचालन ही नहीं कर सकते।

आचार्य चाणक्य के जीवन की एक प्रारम्भिक घटना से उनके चरित्र का बहुत सुन्दर खुलासा होता है। एक बार वे अपने शिष्यों के साथ तक्षशिला से मगध आ रहे थे। मगध का राजा महानन्द उनसे द्वेष रखता था। वह एक बार भरी सभा में चाणक्य का अपमान कर चुका था। तभी से उन्होंने संकल्प कर लिया था कि वे मगध के सम्राट महानन्द को पदच्युत करके ही अपनी शिखा में गांठ बांधेंगे। इसके लिए वे अपने सर्वाधिक प्रिय शिष्य चन्द्रगुप्त को तैयार कर रहे थे।

मगध पहुंचने के लिए वे सीधे मार्ग से न जाकर एक अन्य उबड़-खाबड़ मार्ग से अपना सफर तय कर रहे थे। उस मार्ग में कांटे बहुत थे। तभी उनके नंगे पैर में एक कांटा चुभ गया। वे क्रोध से भर उठे। तत्काल उन्होंने अपने शिष्यों से कहा——'उखाड़ फेंको इन नागफनों को। एक भी शेष नहीं रहना चाहिए।'

उन्होंने तब उन कांटों को ही नहीं उखाड़ा, उन कांटों के वृक्ष की जड़ों में मट्ठा लाकर डाल दिया, ताकि वे दुबारा न उग सकें। इस प्रकार वे अपने शत्रु का समूल नाश करने में ही विश्वास करते थे। वे दूसरों के बनाए रास्तों पर चलने में विश्वास नहीं करते थे, अपने द्वारा नया मार्ग बनाने में उनका विश्वास था।

कहा जाता है कि मगधपति धर्मनन्द ने चाणक्य के पिता चणक का वध किया था। वह राजा अत्यन्त अंहकारी था और सत्ता के नशे में चूर रहता था। प्रजा के सुख-दुःख से उसे कोई लगाव नहीं था। वह अपने ही भोग-विलास में डूबा रहता था। चाणक्य ने ऐसे दुष्ट राजा का वंश समूल रूप से नष्ट करने का संकल्प किया

और उसे नष्ट कर डाला। उसे खत्म करके चाणक्य ने अपने प्रिय शिष्य चन्द्रगुप्त मौर्य को राजसिंहासन पर बैठाया।

राजसत्ता प्राप्त करके भी उन्हें राज-मोह कभी नहीं हुआ। राजमहलों से दूर वन में कुटी बनाकर रहने वाला यह आचार्य, चन्द्रगुप्त मौर्य के शासन को सुदृढ़ करने में निरन्तर लगा रहा। उसने अपने से पूर्ववर्ती चिन्तकों के ग्रन्थों और शास्त्रों का गहन अध्ययन किया। प्राचीन भारत की शासन-व्यवस्था को बारीकी से समझा तथा परखा, पौराणिक ऋषि-मुनियों द्वारा स्थापित मान्यताओं और नीतियों का आकलन किया, वैदिक साहित्य में वर्णित सामाजिक व्यवस्था के गुण-अवगुण का परिशीलन किया।

जिस प्रकार गोस्वामी तुलसीदास ने 'नाना पुराण निगमागम सम्मत' आदर्शों व व्यवस्थाओं का व्यावहारिक परिशीलन करके महान ग्रन्थ 'रामचरितमानस' की रचना की थी, उसी प्रकार चाणक्य ने अपने पूर्ववर्ती विद्वानों द्वारा स्थापित नीति-सूत्रों का गहन अध्ययन किया और सम्राट चन्द्रगुप्त की शासन-व्यवस्था के लिए दिशा-निर्देश तय किए व इतिहास प्रसिद्ध ग्रन्थ 'अर्थशास्त्र' की रचना की। यह ग्रन्थ 'कौटिल्य अर्थशास्त्र' के नाम से कालजयी रचना के रूप में राजनीति का महाकाव्य सिद्ध हुआ। इसीलिए चाणक्य द्वारा रचित जो नीति श्लोक आज उपलब्ध होते हैं, उनमें अधिकांशतः शुक्र नीति, 'रामायण' में वर्णित राम-राज्य की नीति और 'महाभारत' में नारद, कृष्ण, विदुर, भीष्म आदि के द्वारा जिस प्रकार की राजनीतिक व्यवस्था और राजा-प्रजा के संबंधों की विस्तृत व्याख्या की गई है, उसका अधिकांश अंश लेकर चाणक्य ने अपने नीति ग्रन्थ की रचना की, परंतु उन्होंने नकल नहीं की, अपितु उनका अनुशीलन करके केवल उन्हें युगानुकूल स्वरूप दिया, बल्कि उनका वर्तमान युग की परिस्थितियों से पूरा-पूरा तालमेल स्थापित किया।

प्राचीन काल में, भारतीय चिन्तकों और मनीषियों ने मनुष्य-जीवन की प्रत्येक भंगिमा को बहुत करीब से देखा

था। उनकी प्रत्येक भावनाओं को जांचा-परखा था और जिस प्रकार उन्हें सरलता से कंठस्थ किया जा सके, उसे ध्यान में रखकर मनुष्य की भलाई के लिए, उन्होंने अपने उस चिन्तन को छोटे-छोटे सरल नीति वाक्यों में बांध लिया।

महर्षि पातंजलि का योग सूत्र, नारद का भक्ति सूत्र, वात्स्यायन का कामसूत्र, भारत मुनि का नाट्य सूत्र, शुक्राचार्य की शुक्रनीति, कामन्दकीय नीतिसार, धर्मसूत्र, मनुस्मृति, वैदिक साहित्य सूत्र, उपनिषद, पुराण, संस्कृत महाकाव्य, पाणिनि की अष्टाध्यायी, शतपथ ब्राह्मण, रामायण, महाभारत, बौद्ध और जैन साहित्य आदि अति प्राचीन ग्रन्थ हैं, जिनसे सम्पूर्ण धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक जीवन की छोटी-से-छोटी बात का उल्लेख प्राप्त होता है। विद्वानों का मत है कि ये ग्रन्थ ईसा के जन्म से सैकड़ों वर्ष पहले लिखे जा चुके थे और चाणक्य के काल से भी काफी पहले इनका प्रचुरता के साथ प्रचलन था। दरअसल इसमें कोई विभेद नहीं है कि हमारी प्राचीन राज्य-व्यवस्था उतनी ही पुरानी है, जितनी कि हमारी सभ्यता, संस्कृति और हमारा धर्म है। प्राचीन भारतीय साहित्य में राज्य-व्यवस्था को राजधर्म, राजनीति, राज्यशास्त्र, दण्डनीति, नीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र आदि नामों से ही जाना जाता रहा है।

कौटिल्य ने भी अपने अर्थशास्त्र में अपने से पूर्ववर्ती अर्थशास्त्र के ज्ञाता, उन्नीस आचार्यों के नामों का उल्लेख किया है। इनके रहते हुए भी प्राचीन भारत के राजशास्त्रियों में चाणक्य का स्थान सर्वोपरि है। उन्हें शासन-कला और कूटनीति का महान प्रतिपादक माना जाता है। 'कौटिल्य का अर्थशास्त्र' राजनीति शास्त्र का सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। उनके इस ग्रन्थ में उनके नीति वाक्य सरल संस्कृत श्लोकों और सूत्रों के रूप में बिखरे पड़े हैं। आज बाजार में 'चाणक्य नीति' के रूप में कितनी ही पुस्तकें उपलब्ध हैं। उनमें कितने ही श्लोकों की पुनरावृत्ति भी प्राप्त होती है। संस्कृत भाषा का दोष भी काफी मिलता है और जगह-जगह अर्थ का अनर्थ भी किया गया है। इन सभी बातों को देखते हुए हमने चाणक्य द्वारा रचित नीतियों को संग्रहीत

कर प्रकाशित किया है और उनके अर्थ को सटीक बनाने की यथासंभव कोशिश की है। इस अर्थ की सार्थकता के लिए हमने इसे वर्तमान संदर्भों के साथ जोड़ने का भी प्रयास किया है।

सरल और सहज भाषा में अर्थ की व्याख्या की गई है और यह भी प्रयास किया है कि पुस्तक केवल उपदेशात्मक बनकर ही न रह जाए। विश्व के इतिहास में ऐसा व्यक्ति आपको ढूंढ़ने पर भी नहीं मिलेगा, जिसने अपने बुद्धि चातुर्य से राजसत्ता को प्राप्त करने में विजय श्री प्राप्त की हो। राजा और प्रजा के मध्य चाणक्य ने एक ऐसा सेतु स्थापित किया था, जिसकी आधार-शिला ठोस भूमि पर स्थापित है। उनके द्वारा प्रस्तुत नीति वाक्यों और सूत्रों को पढ़कर जन-मानस में एक नया जोश, ओज, तेज, दृढ़ता, साहस, आत्मविश्वास और समाज के पुनः उत्थान की एक ऐसी नवचेतना जाग्रत होती है, जिसकी मिसाल इतिहास में प्राप्त नहीं होती।

आचार्य चाणक्य के जीवन का उद्देश्य था——जन कल्याण। इसी उद्देश्य के निमित्त उन्होंने अपने ग्रन्थों की संरचना की थी। उनकी राजनीति सदाचार और धर्म से अलग नहीं थी। आज के संदर्भ में चाणक्य की नीतियां उतनी ही कारगर हैं, जितनी कि चाणक्य के काल में थीं। मनुष्य आज भी वही है, जो तब था। आज उसे जिस तरह की परिस्थितियों के मध्य से गुजरना पड़ रहा है, उस समय भी कमोबेश कुछ ऐसी ही स्थितियों से उसे दो-चार होना पड़ता होगा।

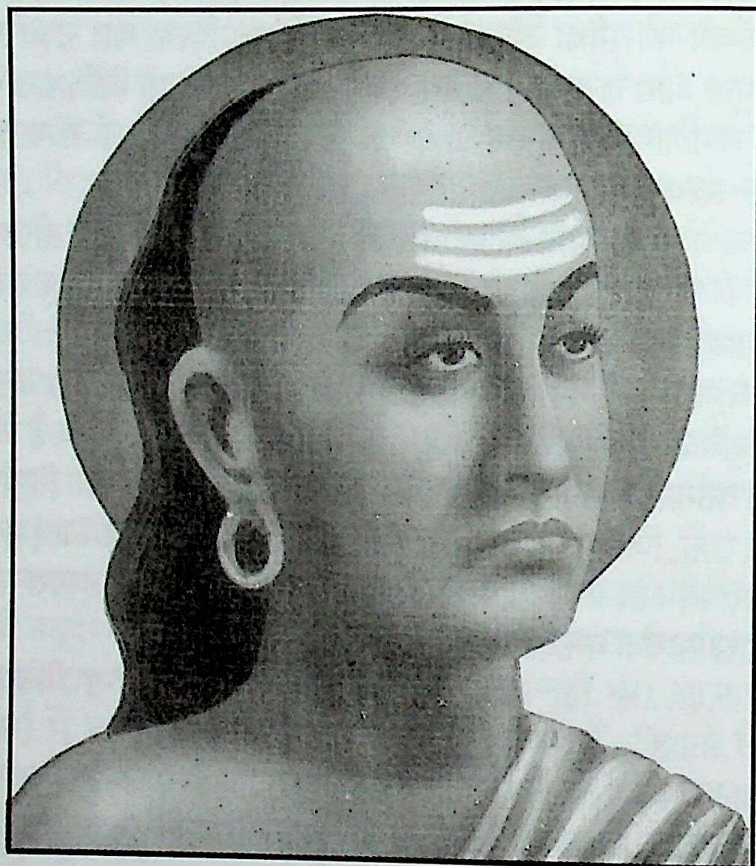
आज जिस प्रजातन्त्र के मध्य हम जी रहे हैं, उस समय का राजतन्त्र कुछ ऐसा ही रहा होगा। चाणक्य की नीतियों से तत्कालीन समाज का स्पष्ट चित्रण हमें प्राप्त होता है। आज का प्रजातन्त्र तत्कालीन राजतन्त्र का ही बदला हुआ स्वरूप है। बस आज इतनी छूट अवश्य मिली है कि देश का एक अदना-सा व्यक्ति भी प्रधानमंत्री की आलोचना में मुंह खोल सकता है। तब शायद ऐसा न रहा हो, परंतु अपने ज्ञान की प्रबुद्धता के तेज से चाणक्य जैसा व्यक्ति ही तब भी राजा को स्पष्ट चुनौती देने की क्षमता

रखता था। इसी बात को ध्यान में रखकर सम्भवत: चाणक्य ने चन्द्रगुप्त के काल में राजा और प्रजा के मध्य समन्वय का सीधा और सरल मार्ग निश्चित किया था। राजा के सम्मुख आम जनता को महत्त्व देकर और कूटनीति के विविध अंगों का सांगोपांग चित्रण करके चाणक्य ने सम्राट चन्द्रगुप्त के राज्य को एक अत्यन्त मजबूत आधारशिला प्रदान की थी।

चाणक्य के नीति वाक्य भले ही शब्द-विन्यास में छोटे हों, पर उनमें जो भाव भरे हैं, वे अत्यन्त विपुल हैं, गहन हैं और दूर तक प्रभावित करने वाले हैं।

चाणक्य की नीतियों का सरल भाषा में अनुवाद करने तथा उन्हें आधुनिक संदर्भों के साथ जोड़ने के पीछे हमारा यही उद्देश्य है कि हम वर्तमान शासन-सत्ता और प्रजा के मध्य एक ऐसे सेतु का निर्माण कर सकें, जिस पर से होकर जनहित और राष्ट्रहित की भावनाएं एक दूसरे की ओर प्रवाहित हों। यदि यह सम्भव हो सका तो हमारा यह प्रयास सार्थक कहलाएगा।

—महेन्द्र मित्तल



आचार्य चाणक्य कूटनीति और राजनीति के महान स्तम्भ हैं। उन जैसा नीतिज्ञ पिछले दो हजार वर्षों में अवतरित नहीं हुआ। चाणक्य के ग्रन्थों में उनका अर्थशास्त्र और चाणक्य नीति दो प्रमुख ग्रन्थ हैं।

वे एक ऐसे राजनीतिज्ञ थे, जिन्होंने मगध के अत्याचारी राजा नन्द का समूल नाश कर, उसके स्थान पर मौर्य साम्राज्य की स्थापना की तथा अर्थशास्त्र जैसे राजनीति विषयक गूढ़ ग्रन्थ की रचना कर संसार में अपना नाम अमर कर दिया।

विषय सूची



॥ अथ प्रथम अध्याय ॥

प्रणम्य शिरसा विष्णुं त्रैलोक्याधिपतिं प्रभुम्।
नानाशास्त्रोद्धृतं वक्ष्ये राजनीतिसमुच्चयम्।।

सर्वशक्तिमान तीनों लोकों के स्वामी श्री विष्णु भगवान को शीश नवाकर मैं अनेक शास्त्रों से निकाले गए राजनीति सार के तत्त्व को जन कल्याण हेतु समाज के सम्मुख रखता हूं।।1।।

राजनीति के प्रकाण्ड विद्वान चाणक्य तक्षशिला विश्वविद्यालय में राजनीति शास्त्र के आचार्य थे। यहां प्रारम्भ में वे उस परम पिता परमात्मा का स्मरण करते हैं और राजनीति के सार तत्त्व को जन-मानस के सम्मुख रखते हैं।

अधीत्येदं यथाशास्त्रं नरो जानाति सत्तमः।
धर्मोपदेशविख्यातं कार्याऽकार्यं शुभाशुभम्।।

इस राजनीति शास्त्र का विधिपूर्वक अध्ययन करके यह जाना जा सकता है कि कौन-सा कार्य करना चाहिए और कौन-सा कार्य नहीं करना चाहिए। यह जानकर वह एक प्रकार से धर्मोपदेश प्राप्त करता है कि किस कार्य के करने से अच्छा परिणाम निकलेगा और किससे बुरा। उसे अच्छे बुरे का ज्ञान हो जाता है।।2।।

चाणक्य का मत है कि राजनीति में कभी-कभी कुछ कर्म ऐसे दिखाई पड़ते हैं जिन्हें देखकर सोचना पड़ता है कि यह उचित हुआ या अनुचित, परंतु जिस अनीति कार्य से भी जन-कल्याण होता हो अथवा धर्म का पक्ष प्रबल होता हो तो उस अनैतिक कार्य को भी नीति सम्मत ही माना जाएगा। उदाहरण के रूप में महाभारत के युद्ध में युधिष्ठिर द्वारा 'अश्वत्थामा' की मृत्यु का उद्घोष करना यद्यपि नीति विरुद्ध था, पर नीति कुशल योगीराज कृष्ण ने इसे उचित माना था, क्योंकि वे गुरु द्रोणाचार्य के विकट संहार से अपनी सेना को बचाना चाहते थे।

तदहं संप्रवक्ष्यामि लोकानां हितकाम्यया।
येन विज्ञानमात्रेण सर्वज्ञत्वं प्रपद्यते।।

लोगों की हित कामना से मैं यहां उस शास्त्र को कहूंगा, जिसके जान लेने से मनुष्य सब कुछ जान लेने वाला-सा हो जाता है।।3।।

यहां चाणक्य ने संकेत दिया है कि जो व्यक्ति राजनीति से सम्बन्धित उनकी नीतियों को जान लेगा, वह राजनीति का प्रकाण्ड पंडित हो जाएगा। वस्तुतः चाणक्य ने राजनीति के विषय में शास्त्रों का गूढ़ अध्ययन किया था तथा उनका सूक्ष्म परीक्षण भी किया था।

अपने जीवन का अनुभव उन्होंने पूरी ईमानदारी के साथ इन श्लोकों में उतार दिया है।

मूर्खशिष्योपदेशेन दुष्टस्त्रीभरणेन च।
दुःखितैः सम्प्रयोगेण पण्डितोऽप्यवसीदति।।

मूर्ख छात्रों को पढ़ाने तथा दुष्ट स्त्री के पालन-पोषण से और दुःखियों के साथ संबंध रखने से, बुद्धिमान व्यक्ति भी दुःखी होता है। तात्पर्य यह कि मूर्ख शिष्य को कभी भी उचित

उपदेश नहीं देना चाहिए, पतित आचरण वाली स्त्री की संगति करना तथा दुःखी मनुष्यों के साथ समागम करने से विद्वान तथा भले व्यक्ति को दुःख ही उठाना पड़ता है।।4।।

वास्तव में शिक्षा उसी व्यक्ति को देनी चाहिए जो सुपात्र हो। जो व्यक्ति बताई गई बात को न समझे, उसे परामर्श (शिक्षा) देने से कोई लाभ नहीं। मूर्ख व्यक्ति को शिक्षा देकर समय ही नष्ट किया जाता है। इसी तरह पतिता स्त्री का भरण-पोषण अथवा उसकी संगति करके विद्वान व्यक्ति की गरिमा को ठेस पहुंच सकती है, उसका अपमान हो सकता है।

यही बात दुःखी व्यक्ति के साथ संबंध रखने की है। दुःखी व्यक्ति हर पल अपना ही रोना रोता रहता है। इससे विद्वान व्यक्ति की साधना और एकाग्रता भंग हो जाती है। एकाग्रता भंग होना अथवा साधना में व्यवधान पड़ना बुद्धिमान व्यक्ति को बहुत कचोटता है।

दुष्टा भार्या शठं मित्रं भृत्युश्चोत्तरदायकः।
ससर्पे च गृहे वासो मृत्युरेव न संशयः।।

दुष्ट स्त्री, छल करने वाला मित्र, पलटकर तीखा जवाब देने वाला नौकर तथा जिस घर में सांप रहता हो, उस घर में निवास करने वाले गृहस्वामी की मौत में संशय न करें। वह निश्चित मृत्यु को प्राप्त होता है।।5।।

घर में यदि दुष्ट और दुश्चरित्र पत्नी हो तो उसके पति का जीना, न जीने के बराबर ही है। वह अपमान और लज्जा के बोझ से एक तो वैसे ही मृतक समान है, ऊपर से उसे सदैव यह भय भी बना रहता है कि यह स्त्री अपने स्वार्थ के लिए कहीं उसे विष न दे दे, क्योंकि ऐसी दुष्ट और पतिता स्त्रियों

का कोई पतिव्रत धर्म नहीं होता। उन्हें तो केवल अपनी ऐयाशी से मतलब होता है।

दूसरे, यदि उस गृहस्वामी का मित्र भी दगाबाज हो, धोखा देने वाला हो तो ऐसा 'मित्र' आस्तीन का सांप होता है। वह कभी भी अपने स्वार्थ के लिए गृहस्वामी को ऐसी स्थिति में डाल सकता है, जिससे उबरना उसकी सामर्थ्य से बाहर की बात होती है, तब वह जीते-जी मर जाता है।

तीसरे, घर में यदि नौकर बद्‌जुबान हो, बात-बात में झगड़ा करने वाला हो, पलटकर तीखा जवाब देने वाला हो तो समझ लेना चाहिए कि ऐसा नौकर निश्चित रूप से घर के भेद जानता है और जो घर के भेद जान लेता है, वह उसी तरह से घर-बार का विनाश कर सकता है, जैसे विभीषण ने घर के भेद देकर रावण का विनाश करा दिया था, तभी मुहावरा भी बना--'घर का भेदी लंका ढाये।' जब घर का ही विनाश हो जाए तो उस घर के गृहस्वामी की स्थिति मरे हुए के ही समान है।

चौथे, जिस घर में छिपकर रहने वाले सांप की सम्भावना हो तो गृहस्वामी को निरन्तर यह भय बना रहेगा कि सांप उसे डस न ले। इस प्रकार मृत्यु का भय मृत्यु सें भी भयानक होता है। वह शीघ्र ही भय और चिंता से ग्रसित होकर मृत्यु को प्राप्त हो जाता है।

इस प्रकार चाणक्य ने राजा अथवा गृहस्वामी को दुष्टा स्त्री, आस्तीन के सांप मित्र, वाचाल नौकर और घर में छिपे सांपों अर्थात दुश्मनों से सदैव सतर्क रहने की शिक्षा इस श्लोक में दी है।

भाव यह है कि राजा को अपनी पत्नी, नौकर और मित्र का चुनाव बहुत सोच-समझकर करना चाहिए ताकि घर में छिपे दुश्मनों का सिर कुचला जा सके।

आपदर्थे धनं रक्षेद् दारान् रक्षेद् धनैरपि।
आत्मानं सततं रक्षेद् दारैरपि धनैरपि।।

विपत्ति के समय काम आने वाले धन की रक्षा करें। धन से स्त्री की रक्षा करें और अपनी रक्षा धन और स्त्री से सदा करें।।6।।

संकट के समय धन की जरूरत सभी को होती है इसलिए संकट काल के लिए धन बचाकर रखना उत्तम होता है। धन से अपनी पत्नी की रक्षा की जा सकती है, अर्थात यदि परिवार पर कोई संकट आए तो धन का लोभ नहीं रखना चाहिए, परंतु यदि अपने ही ऊपर कोई संकट आ जाए तो उस समय धन व स्त्री दोनों का बलिदान कर देना चाहिए।

चाणक्य का कहना यह है कि यद्यपि परिवार में धन और अपनी स्त्री का सर्वाधिक महत्त्व है किन्तु यदि अपना ही जीवन संकट में पड़ जाए तो वह न तो अपने धन की रक्षा कर पाएगा और न अपनी स्त्री की ही रक्षा कर पाएगा।

इससे तो अच्छा यही है कि वह अपने को बचाने के लिए धन और स्त्री का मोह छोड़ दे, अर्थात परिवार की स्त्रियों की लाज बचाने के लिए उन्हें जौहर व्रत का पालन करने की आज्ञा दे देनी चाहिए।

अपादर्थे धनं रक्षेच्छ्रीमतां कुतआपदः।
कदाचिच्चलते लक्ष्मीः सञ्चितोऽपि विनश्यति।

आपत्ति से बचने के लिए धन की रक्षा करें क्योंकि पता नहीं कब आपदा आ जाए। लक्ष्मी तो चंचल है। संचय किया गया धन कभी भी नष्ट हो सकता है।।7।।

लक्ष्मी का स्वभाव चंचल माना गया है, अर्थात धन आज है, कल नहीं होगा। वह कभी भी साथ छोड़कर जा सकता

है इसलिए संकटकाल के लिए धन की रक्षा अत्यंत जरूरी है, इसका एक आशय यह भी है कि मनुष्य को सदैव लक्ष्मी का ही विश्वास नहीं करना चाहिए क्योंकि लक्ष्मी तो चंचल होती है। उसे अपने पुरुषार्थ और कर्म पर भी भरोसा रखना चाहिए, ताकि लक्ष्मी के साथ छोड़े जाने के बाद वह अपने आपको असहाय अनुभव न करने लगे।

यस्मिन् देशे न सम्मानो न वृत्तिर्न च बान्धवाः।
न च विद्याऽऽगमः कश्चित् तं देशं परिवर्जयेत्॥

जिस देश में सम्मान नहीं, आजीविका के साधन नहीं, बन्धु-बांधव अर्थात परिवार नहीं और विद्या प्राप्त करने के साधन नहीं, वहां कभी नहीं रहना चाहिए।।8।।

यह एक सामान्य-सी बात है कि आदमी वहीं रहना पसंद करता है, जहां उसे सम्मान मिले। जीवन-यापन के साधन जहां सुलभ हों, जहां उसके बंधु-बांधव और मित्रगण आदि रहते हों तथा जहां रहकर वह स्वयं और अपने बच्चों को शिक्षित करा सके, अर्थात जहां विद्याध्ययन के अच्छे साधन उपलब्ध हों। जहां ऐसी परिस्थितियां और साधन उपलब्ध नहीं होते, वहां रहने वाले लोग सम्पूर्ण संसार से कटकर जल्दी ही नष्ट हो जाते हैं।

धनिकः श्रोत्रियो राजा नदी वैद्यस्तु पञ्चमः।
पञ्च यत्र न विद्यन्ते न तत्र दिवसं वसेत्॥

जहां धनी, वैदिक ब्राह्मण, राजा, नदी और वैद्य, ये पांच न हों, वहां एक दिन भी नहीं रहना चाहिए। भावार्थ यह कि जिस जगह पर इन पांचों का अभाव हो, वहां मनुष्य को एक दिन भी नहीं ठहरना चाहिए।।9।।

मनुष्य-जीवन के लोक-परलोक को संवारने में इन

पांचों का विशेष महत्त्व है। जहां धनी व्यक्ति होंगे, वहां व्यापार अच्छा होगा। व्यापार अच्छा होगा तो आजीविका के साधन अच्छे होंगे। जहां श्रुतियों अर्थात वेदों के ज्ञाता ब्राह्मण होंगे, वहां मनुष्य जीवन के धार्मिक तथा ज्ञान के क्षेत्र में विस्तृत रूप से फैले हुए सभी शैक्षिक कार्यों को सहज रूप से सम्पन्न कर सकेगा। जहां स्वच्छ जल की नदी होगी, वहां जल का अभाव नहीं रहेगा और जहां कुशल वैद्य होंगे, वहां बीमारी पास नहीं आ सकेगी।

इसी तरह शासन-व्यवस्था को सुचारु रूप देने के लिए राजा की आवश्यकता होती है और नदी अर्थात जल के बिना तो जीवन अधूरा है ही——इस प्रकार ये पांचों मनुष्य के सामाजिक जीवन के लिए परम आवश्यक हैं। जहां इनका अभाव हो वहां भूलकर भी निवास नहीं करना चाहिए।

लोकयात्रा भयं लज्जा दाक्षिण्यं त्यागशीलता।
पञ्च यत्र न विद्यन्ते न कुर्यात्त् तत्र संस्थितिम्।।

जहां जीविका, भय, लज्जा, चतुराई और त्याग की भावना, ये पांचों न हों, वहां के लोगों का साथ कभी न करें।।10।।

जिस स्थान पर जीवन-यापन के साधन न हों, जहां सदैव भय की स्थितियां बनी रहती हों, जहां लज्जाशील व्यक्तियों की जगह बेशर्म और खुदगर्ज लोग रहते हों, जहां कला-कौशल और हस्तशिल्प का सर्वथा अभाव हो और जहां के लोगों के मन में जरा भी त्याग और परोपकार की भावनाएं न हों, वहां के लोगों के साथ न तो रहें और न ही उनसे व्यवहार करें। इसका भाव यही है कि आदमी को ऐसे स्थान पर रहना चाहिए जहां के लोग ईश्वर-भक्त हों, परोपकारी हों, व्यवहार-कुशल हों, आत्मसम्मानी हों, कर्मठ हों और बुद्धिमान हों।

जानीयात् प्रेषणे भृत्यान् बान्धवान् व्यसनाऽऽगमे।
मित्रं चाऽऽपत्तिकालेषु भार्या च विभवक्षये।।

नौकरों को बाहर भेजने पर, भाई-बंधुओं को संकट के समय तथा दोस्त को विपत्ति में और अपनी स्त्री को धन के नष्ट हो जाने पर परखना चाहिए, अर्थात उनकी परीक्षा करनी चाहिए।।11।।

चाणक्य ने समय-समय पर अपने सेवकों, भाई-बंधुओं, मित्रों और अपनी स्त्री की परीक्षा लेने की बात कही है, समय आने पर ये लोग आपका किस प्रकार साथ देगें, इसकी जांच उनके कार्यों से होती है। वास्तव में इस संसार में मनुष्य का संपर्क अपने सेवकों, बंधु-बांधवों, मित्रों और सबसे निकट अपनी पत्नी से होता है। यदि ये लोग छल करने लगें तो जीवन दूभर हो जाता है, इसलिए समय-समय पर अपने मित्रों, सेवकों, बंधु-बांधवों व अपनी पत्नी की परीक्षा करके पहचान करना जरूरी हो जाता है कि वे उसे धोखा तो नहीं दे रहे हैं। इस संसार में मित्र और पत्नी से बड़ा सहायक कोई दूसरा नहीं होता, परंतु इनकी पहचान तभी हो पाती है जब संकट का समय उपस्थित होता है।

आतुरे व्यसने प्राप्ते दुर्भिक्षे शत्रुसंकटे।
राजद्वारे श्मशाने च यस्तिष्ठति स बान्धवः।।

बीमारी में, विपत्तिकाल में, अकाल के समय, दुश्मनों से दुःख पाने या आक्रमण होने पर, राजदरबार में और श्मशान-भूमि में जो साथ रहता है, वही सच्चा भाई अथवा बंधु है।।12।।

आचार्य चाणक्य के अनुसार संसार में मनुष्य के बंधु-बांधव तो बहुत होते हैं, लेकिन सच्चे बंधु कम ही मिलते हैं। अक्सर देखा गया है कि कुछ लोग अपना उद्देश्य (स्वार्थ) पूरा

करने के लिए सच्चा मित्र, सच्चा बंधु होने का ढोंग रचाते हैं और जब अपना स्वार्थ सिद्ध हो जाता है तो किनारा कर लेते हैं। सच्चा बंधु (सगा, संबंधी, घनिष्ठ मित्र) केवल वही है जो दैहिक, दैविक और भौतिक, किसी भी प्रकार का संकट पड़ने पर काम आए। यदि व्यक्ति रोगी हो गया है तो उसकी परिचर्या करने में और अकाल आदि पड़ने पर अपने बंधु की यथासंभव मदद करे। शत्रु द्वारा प्रताड़ित किए जाने पर, किसी भी प्रकार की राजकीय समस्या आ जाने पर और शोक के अवसर पर बराबर साथ दे——वही सच्चे अर्थों में बंधु कहलाने का अधिकारी है।

दूसरे अर्थों में जब मनुष्य के पास सभी सुख-समृद्धि हो, उसे किसी प्रकार का कोई दुःख न हो तो सभी उसके मित्र बने रहते हैं, परंतु जब वह दुःख से घिर जाता है तो उसका कोई साथ नहीं देता। इस संसार में सभी सुख के साथी हैं, दुःख पड़ने पर कोई भी सहायता करने को तैयार नहीं होता और जो सहायता करता है, वही मनुष्य का सच्चा बंधु अथवा मित्र कहलाता है।

यो ध्रुवाणि परित्यज्य अध्रुवं परिषेवते।
ध्रुवाणि तस्य नश्यन्ति अध्रुवं नष्टमेव च।।

जो अपने निश्चित कर्मों अथवा वस्तु का त्याग करके, अनिश्चित की चिंता करता है, उसका अनिश्चित लक्ष्य तो नष्ट होता ही है, निश्चित भी नष्ट हो जाता है।।13।।

किसी ने सही कहा है—'आधी को छोड़, सारी को धावे, आधी मिले न पूरी पावे।' जो व्यक्ति अपने निश्चित लक्ष्य से भटक जाता है, उसका कोई भी लक्ष्य पूरा नहीं होता। भाव यही है कि आदमी को उन्हीं कार्यों में हाथ डालना चाहिए, जिन्हें वह पूरा करने की सामर्थ्य रखता है। यदि वह अपनी

सामर्थ्य से बाहर का कोई काम पकड़ लेता है तो वह उसे पूरा नहीं कर पाता, तब वह बाद में पछताता है कि उसने अपने हाथ का काम छोड़कर दूसरे कार्य को क्यों पकड़ा।

वरयेत् कुलजां प्राज्ञो विरूपामपि कन्यकाम्।
रूपशीलां न नीचस्य विवाहः सदृशे कुले।।

बुद्धिहीन व्यक्ति को अच्छे कुल में जन्म लेने वाली कुरूप कन्या से भी विवाह कर लेना चाहिए, परंतु अच्छे रूप वाली नीच कुल की कन्या से विवाह नहीं करना चाहिए क्योंकि विवाह-संबंध समान कुल में ही श्रेष्ठ होता है।।14।।

यहां चाणक्य ने विवाह संबंधों पर प्रकाश डालते हुए समाज को बताया है कि विवाह-संबंध समान स्तर और गुण वाले कुल में ही करने चाहिए। केवल रूप देखकर उसके पीछे नहीं भागना चाहिए। यह हो सकता है कि अच्छे रूप वाली युवती का पारिवारिक परिवेश उत्तम न हो, उसके संस्कार कुलीन अथवा श्रेष्ठ न हों। ऐसी पत्नी जीवन में विष घोलने का ही कार्य करती है। दूसरी ओर कम सुंदर युवती अच्छे संस्कारों में पली होने के कारण दाम्पत्य-जीवन को सुखमय स्वर्ग में परिवर्तित कर सकती है। अतः रूप देखकर नहीं, जीवन साथी के गुण, संस्कार और कुल की गरिमा को परखकर विवाह रचाना श्रेष्ठ होता है, परंतु आजकल युवक इस ओर ध्यान न देकर युवती के रूप पर ही आसक्त होते दिखाई पड़ते हैं।

नखीनां च नदीनां च शृंगीणां शस्त्रपाणिनाम्।
विश्वासो नैव कर्त्तव्यः स्त्रीषु राजकुलेषु च।।

लम्बे नाखून वाले हिंसक पशुओं, नदियों, बड़े-बड़े सींग वाले पशुओं, शस्त्रधारियों, स्त्रियों और राज-परिवारों का कभी विश्वास नहीं करना चाहिए।।15।।

यहां चाणक्य लम्बे-पैने नाखून और सींगधारी पशुओं के माध्यम से यही बताना चाहते हैं कि हिंसक पशुओं पर कभी भरोसा नहीं करना चाहिए। उनकी स्वाभाविक वृत्ति आक्रमणकारी होती है। वे कभी भी आक्रमण करके घायल कर सकते हैं और मृत्यु की ओर धकेल सकते हैं। इसी प्रकार नदी का वेग और उसकी गहराई के बारे में पूर्वानुमान लगाना कभी-कभी भारी खतरे में डाल देता है। नदी-तल में कोई गहरा गड्ढ़ा छिपा हो सकता है और उसमें अचानक बाढ़ आ सकती है। पहाड़ों पर हुई वर्षा का जल कभी भी नदी में बढ़ सकता है इसलिए नदी के स्वभाव के बारे में भी कभी भरोसा नहीं करना चाहिए, अर्थात अपने बचाव का प्रबंध किए बिना जल में प्रवेश नहीं करना चाहिए।

यही दशा शस्त्रधारियों, स्त्रियों और राज-परिवारों की भी होती है। शस्त्रधारी कभी भी अपने शस्त्र का प्रयोग कर सकता है, स्त्री कभी भी धोखा दे सकती है और राज-परिवारों की स्वार्थ नीति पल-प्रतिपल बदलती रहती है। अतः इनसे सदैव सतर्क रहना चाहिए।

विषादप्यमृतं ग्राह्यममेध्यादपि काञ्चनम्।
नीचादप्युत्तमा विद्या स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि।।

विष से अमृत, अशुद्ध स्थान से सोना, नीच कुल वाले से विद्या और दुष्ट स्वभाव वाले कुल की गुणी स्त्री को ग्रहण करना अनुचित नहीं है।।16।।

चाणक्य की इस नीति का आशय यही है कि यदि विष से अमृत प्राप्त होता हो, अर्थात किसी ऐसी जहरीली जड़ी-बूटी से दुसाध्य रोग का निदान होता हो, जैसे सांप के जहर से ही सांप के काटे का इलाज करने वाली दवा बनाई जाती है तो उसे

स्वीकार करने में देर नहीं लगानी चाहिए। इसी प्रकार यदि किसी अशुद्ध स्थान पर स्वर्ण अथवा स्वर्ण से निर्मित आभूषण पड़े मिलें तो उन्हें स्वीकार कर लेना चाहिए।

भाव यह है कि गुण जहां से भी मिलें, उन्हें ग्रहण करने में संकोच नहीं करना चाहिए। दुर्गुणों से युक्त व्यक्ति में भी अगर कोई सद्‌गुण है तो उसे अवश्य ही ग्रहण करना चाहिए। यही बात आगे भी कही गई है कि यदि नीच कुल वाले व्यक्ति से श्रेष्ठ विद्या प्राप्त हो तो उसे तत्काल ग्रहण करें और दुष्ट कुल में जन्म लेने वाली स्त्री में यदि कुलीन गुणों अथवा किसी विशेष कला का प्रादुर्भाव हुआ हो तो उस स्त्री को पाने में संकोच नहीं करना चाहिए। भाव यही है कि श्रेष्ठ गुण जहां से भी और जिस स्थिति में भी प्राप्त होते हों, उन्हें ग्रहण करना श्रेष्ठता का ही प्रतीक है।

स्त्रीणां द्विगुण आहारो बुद्धिस्तासां चतुर्गुणाः।
साहसं षड्गुणं चैव कामोऽष्टगुण उच्यते।।

पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों का भोजन दुगुना, लज्जा चौगुनी, साहस छः गुना और काम (रति इच्छा) आठ गुना अधिक होता है।।17।।

चाणक्य के अनुसार स्त्रियां पुरुषों से दो गुना भोजन करती हैं। स्त्रियों में लाज का भाव पुरुष से चार गुना होता है। उनमें साहस पुरुष से छः गुना होता है, अर्थात स्त्री किसी भी पुरुष से अधिक सहनशील और साहसी होती है। इसके अतिरिक्त स्त्री में रति इच्छा पुरुष से आठ गुना अधिक होती है।

चाणक्य ने ये निष्कर्ष किस आधार पर निकाले थे इस विषय में विश्वासपूर्वक कुछ भी नहीं कहा जा सकता। उपरोक्त परिप्रेक्ष्य में आज की स्थिति सर्वथा भिन्न है। आज पुरुष

का भोजन निश्चित रूप से स्त्री से अधिक है।

लज्जा के बारे में निश्चित ही कहा जा सकता है कि स्त्री में लज्जा पुरुष से कहीं अधिक होती है। स्त्री पुरुष की भांति बेशर्म नहीं हो सकती। तीसरे, साहस के मामले में भी पुरुष स्त्री से कहीं अधिक साहसी होता है परंतु सहनशीलता में स्त्री पुरुष से मीलों आगे है। स्त्री के मन की थाह पाना आसान नहीं है। वह अत्यन्त साहस के साथ कितनी ही निजी जीवन की बातों को छिपाकर रख सकती है। जहां तक उसमें काम-भावना की बात है, तो पुरुष ही उससे अधिक कामी दिखाई पड़ता है। स्त्री एक पुरुष के साथ सारा जीवन गुजार सकती है, पर एक कामुक पुरुष एक स्त्री से संतुष्ट नहीं हो पाता। इतना अवश्य सुना है कि स्त्री जब कामांध होती है, तब उसे रोक पाना किसी के भी बूते के बाहर होता है। यदि इसे चाणक्य ने आधार माना है तो ठीक ही है।



॥ अथ द्वितीय अध्याय ॥

अनृतं साहसं माया मूर्खत्वमतिलुब्धता।
अशौचत्वं निर्दयत्वं स्त्रीणां दोषाः स्वभावजाः॥

झूठ बोलना, उतावलापन दिखाना, छल-कपट, मूर्खता, अत्यधिक लालच करना, अशुद्धता और दयाहीनता, ये सभी प्रकार के दोष स्त्रियों में स्वाभाविक रूप से मिलते हैं॥1॥

स्त्रियों के विषय में चाणक्य की उपर्युक्त धारणा का कारण क्या रहा था, यह कहना तो कठिन है, परंतु सभी स्त्रियों में ये स्वाभाविक दुर्गुण हों, यह संभव नहीं है। चाणक्य के काल में स्त्री-शिक्षा का निश्चित रूप से अकाल रहा होगा। इसी आधार पर चाणक्य ने स्त्री को मूर्ख, लालची, अशुद्ध, झूठी, छली आदि कहा होगा, लेकिन दयाहीनता की भावना स्त्री का स्वाभाविक दोष नहीं माना जा सकता। इनमें से बहुत-से दोष पुरुषों में भी देखे जा सकते हैं। बल्कि झूठ बोलना, छल-कपट करना, दयाहीनता, लालच आदि दोष तो पुरुष वर्ग में ही अधिक पाए जा सकते हैं। गुण और दोष स्वभाव से भी होते हैं और उन्हें अर्जित भी किया जाता है, परंतु ये सभी परिस्थिति पर अधिक निर्भर करते हैं।

भोज्यं भोजनशक्तिश्च रतिशक्तिर्वरांगना।
विभवो दानशक्तिश्च नाऽल्पस्य तपसः फलम्॥

भोजन करने तथा उसे अच्छी तरह से पचाने की शक्ति हो तथा अच्छा भोजन समय पर प्राप्त होता हो, प्रेम करने के लिए अर्थात रति-सुख प्रदान करने वाली उत्तम स्त्री के साथ संसर्ग हो, खूब सारा धन और उस धन को दान करने का उत्साह हो, ये सभी सुख किसी तपस्या के फल के समान हैं, अर्थात कठिन साधना के बाद ही प्राप्त होते हैं॥2॥

चाणक्य का विश्वास है कि शुद्ध और सुपाच्य भोजन का मिलना और उसे अच्छी तरह पचाने की शक्ति भाग्य से ही मिलती है या फिर अच्छे स्वास्थ्य के द्वारा ही प्राप्त हो सकती है। अच्छे स्वास्थ्य के द्वारा ही गरिष्ठ अथवा पौष्टिक भोजन पचाया जा सकता है और अच्छे स्वास्थ्य वाला व्यक्ति ही स्त्री के साथ रति-सुख का आनन्द ले सकता है। स्वस्थ व्यक्ति पूरे उत्साह के साथ धन भी उपार्जित कर सकता है और उसी उत्साह से उसे दान करने की क्षमता भी अपने भीतर उत्पन्न कर सकता है। जो स्वस्थ नहीं है, कमजोर है, जिसकी पाचन क्रिया ठीक नहीं है, जो सदैव बीमार और रोगग्रस्त रहता है, उसे यदि अच्छा भोजन, स्वस्थ और सुंदर युवती तथा विपुल धन-वैभव प्राप्त हो भी जाए तो वह उनका उपयोग नहीं कर सकता।

अतः अच्छा स्वास्थ्य साधना के द्वारा ही संभव है।

यस्य पुत्रो वशीभूतो भार्या छन्दाऽनुगामिनी।
विभवे यश्च संतुष्टस्तस्य स्वर्ग इहैव हि॥

जिसका पुत्र आज्ञाकारी हो, स्त्री उसके अनुसार चलने वाली हो, अर्थात पतिव्रता हो, जो अपने पास धन से संतुष्ट रहता हो, उसका स्वर्ग यहीं पर है॥3॥

मनुष्य को आज के जीवन में अथवा किसी भी काल में क्या चाहिए? यही कि उसकी संतान उसके कहने में चलती हो, आज्ञाकारी हो। उसकी स्त्री पतिव्रता हो, अर्थात उसी के प्रति पूरी तरह समर्पित हो और जो धन-वैभव उसे मिला हो, वह उसी पर संतोष धारण किए हो तो उसे किसी स्वर्ग को परलोक में तलाश करने की आवश्यकता नहीं है। वह सुख, वह स्वर्ग तो उसके पास इसी लोक में है।

कहने का आशय यही है कि आदमी को सदैव संतोषी होना चाहिए।

उसे परमात्मा ने जो दिया है या प्रयत्न से उसने जो कुछ भी अर्जित किया है, वह उसी पर संतोष करे। कहा भी है—'संतोष सबसे बड़ा धन है।' इसी प्रकार यदि उसने अपनी संतान में श्रेष्ठ गुणों का समावेश कराया है तो उसकी संतान निश्चित रूप से आज्ञाकारी होगी। यह स्वभाव भी तभी उत्पन्न होता है, जब उसने अपने बच्चों को भी संतोष करना सिखाया हो। यही स्थिति पत्नी के साथ भी है।

पत्नी में यदि कहीं असंतोष की भावना पनप रही है तो वह भावना उसी तक सीमित नहीं रहती, वह उसके बच्चों में भी पनपने लगती है।

इस प्रकार असंतोष के जन्म लेते ही सारा परिवार बिखरकर रह जाता है और जो व्यक्ति अपने ही परिवार से अप्रसन्न हो, परेशान हो, वह व्यक्ति धनवान होते हुए भी नारकीय जीवन जीने के लिए विवश हो जाता है।

मूल भाव यही है कि परिवार का पूरा उत्तरदायित्व यदि पिता संभालता है तो निश्चित रूप से उसकी पत्नी तथा उसकी संतान उसकी आज्ञाकारिणी होगी।

ते पुत्रा ये पितृर्भक्ताः सः पिता यस्तु पोषकः।
तन्मित्रं यत्र विश्वासः सा भार्या यत्र निर्वृतिः॥

पुत्र वे ही हैं जो पिता भक्त हैं। पिता वही है जो बच्चों का पालन–पोषण करता है। मित्र वही है जिसमें पूर्ण विश्वास हो और स्त्री वही है जिससे परिवार में सुख–शान्ति व्याप्त हो॥4॥

जो पुत्र अपने माता–पिता की सेवा करता है, वही वास्तव में पुत्र कहलाने का अधिकारी है। इतिहास में श्रवण कुमार की पितृ–भक्ति की कथा मिलती है, परंतु यह तभी संभव है, जब पिता भी अपने बच्चों के भरण–पोषण के दायित्व को समझता हो। यदि पिता अपने बच्चों के भरण–पोषण की चिंता न करके अपने ही व्यसनों में लिप्त रहता है तो न तो उसके बच्चे उसका आदर करेंगे और न उसकी पत्नी ही उसके प्रति समर्पित होगी।

मित्र की परख बड़ी कठिन है। कठिन स्थितियों में जो बराबर साथ देता है, उसे मित्र समझा जा सकता है। इसके अलावा जिस स्त्री के हाव–भाव से स्नेह की वर्षा होती है, जिसकी वाणी में मिठास होती है, जिसमें गहरी सहनशक्ति होती है, जो हर परिस्थिति में परिवार को संजोए रहती है, जो दुर्दिन में पति की सबसे बड़ी संबल बनी रहती है, जो कुशल गृहिणी के कर्तव्य का पूरा–पूरा पालन करती है, ऐसी पत्नी से घर सुख–शान्ति से भरपूर रहता है।

परोक्षे कार्यहन्तारं प्रत्यक्षे प्रियवादिनम्।
वर्जयेत्तादृशं मित्रं विषकुम्भं पयोमुखम्॥

जो मित्र प्रत्यक्ष रूप से मधुर वचन बोलता हो और पीठ पीछे अर्थात अप्रत्यक्ष रूप से आपके सारे कार्यों में रोड़ा अटकाता हो, ऐसे मित्र को उस घड़े के समान त्याग देना चाहिए जिसके भीतर विष भरा हो और ऊपर मुंह के पास दूध भरा हो॥5॥

ऐसा मित्र, जो आपके मुंह पर तो मीठी-मीठी और चिकनी-चुपड़ी खुशामदी बातें करता हो और पीठ पीछे आपकी बुराई करता हो, आपके सारे कार्यों में विघ्न डालता हो, उसे तत्काल छोड़ देना चाहिए क्योंकि ऐसे लोग मित्र नहीं परम शत्रु होते हैं। ऐसे व्यक्ति 'आस्तीन के सांप' होते हैं। वे उसी प्रकार धोखा देने वाले होते हैं, जैसे कोई विष भरे घड़े के मुंह में गर्दन के आस-पास थोड़ा-सा दूध डालकर देने चला आए। वास्तविक मित्र वही होता है जो मुंह पर तो खरी-खोटी सुना देता है पर पीठ पीछे किसी को अपने मित्र की न तो निन्दा करने देता है और न उसके किसी कार्य को बिगाड़ने देता है।

न विश्वसेत् कुमित्रे च मित्रे चाऽपि न विश्वसेत्।
कदाचित् कपितं मित्रं सर्वं गुह्यं प्रकाशयेत्।।

बुरे मित्र पर और अपने मित्र पर भी विश्वास नहीं करना चाहिए क्योंकि कभी नाराज होने पर संभवतः आपका विशिष्ट मित्र भी आपके सारे रहस्यों को प्रकट कर सकता है।।6।।

चाणक्य यहां मित्र के बारे में अत्यन्त सावधानी बरतने की ओर संकेत कर रहे हैं। उनका कहना है कि जो आपका विरोधी है, पर मित्र होने का दावा करता है, उस पर तो कभी विश्वास करना ही नहीं चाहिए। इसके अलावा जो आपका विश्वसनीय मित्र है, उसे भी आपको अपने परिवार तथा अपनी कोई भी बात ऐसी नहीं बतानी चाहिए जो आपको कभी शर्मिन्दा कर सके क्योंकि संभवतः किन्हीं विशेष परिस्थितियों में आपका मित्र यदि आपसे नाराज हो जाए तो वह आपके परिवार तथा आपके जीवन के उन अप्रिय गूढ़तम रहस्यों को प्रकट कर सकता है और आपको अपमानित होने तक की स्थिति में ला सकता है।

मनसा चिन्तितं कार्यं वाचा नैव प्रकाशयेत्।
मन्त्रेण रक्षयेद् गूढं कार्ये चाऽपि नियोजयेत्॥

मन से विचारे गए कार्य को कभी किसी से नहीं कहना चाहिए, अपितु उसे मंत्र की तरह रक्षित करके अपने (सोचे हुए) कार्य को करते रहना चाहिए॥7॥

अपनी योजना को बता देने से उसका गूढ़ महत्त्व कम हो जाता है। कभी-कभी मित्रगण ही ईर्ष्या के वशीभूत होकर आपको हतोत्साहित करने लग जाते हैं या फिर उसमें रोड़ा अटका देते हैं। वास्तव में आपने स्वयं अपनी योजना के विषय में जितना सोचा-समझा होता है, उतना दूसरे ने नहीं। आप तभी अपने लक्ष्य तक पहुंच सकते हैं, जब आप अपने सोचे हुए कार्य पर अपनी शक्ति के अनुसार स्वयं अमल करें। उसे तब तक छिपाकर रखना चाहिए, जब तक जरूरी न हो जाए। अन्यथा कोई दूसरा ही आपसे पहले उसका लाभ उठा सकता है।

कष्टं च खलु मूर्खत्वं कष्टं च खलु यौवनम्।
कष्टात्कष्टतरं चैव परगेहनिवासनम्॥

निश्चित रूप से मूर्खता दुःखदायी है और यौवन भी दुःख देने वाला है परंतु कष्टों से भी बड़ा कष्ट दूसरे के घर पर रहना है॥8॥

निश्चित रूप से मूर्ख व्यक्ति का समाज में कोई सम्मान नहीं है। विवेकहीन व्यक्ति को पग-पग पर अपमानित होना पड़ता है और परिहास का पात्र बनना पड़ता है। इसी प्रकार यौवन के आने पर भी आदमी कभी-कभी अपना विवेक और आपा खो बैठता है। जवानी में आदमी का जोश और उत्साह तो खूब बढ़ा-चढ़ा होता है, पर वह अपना होश खोए रहता है। उसमें अपनी शक्ति का अहम इस कदर बढ़ जाता है कि उसे अपने सामने वाला व्यक्ति तुच्छ दिखाई देने लगता है। उसका

यह अहंकार ही उसे दुःख पहुंचाता है। चाणक्य का कहना है कि किसी को विवशता में जब दूसरे के घर पर निर्भर रहना पड़े तो उसका अपना वर्चस्व समाप्त हो जाता है। उसे दूसरे की कृपा पर निर्भर रहना पड़ता है। उसकी स्वाधीनता नष्ट हो जाती है। यही उसके दुःखों का सबसे बड़ा कारण है।

शैले शैले न माणिक्यं मौक्तिकं न गजे गजे।
साधवो न हि सर्वत्र चंदनं न वने वने।।

हर एक पर्वत में मणि नहीं होती और हर एक हाथी में मुक्तामणि नहीं होती। साधु लोग सभी जगह नहीं मिलते और हर एक वन में चंदन के वृक्ष नहीं होते।।9।।

चाणक्य का यहां आशय यही है कि अच्छी चीजें सभी जगह प्राप्त नहीं होतीं। पर्वतश्रृंखलाओं के मध्य खनिज पदार्थ भरे पड़े हैं। उनमें हीरे-जवाहरातों की खाने भी हैं परंतु सभी पर्वतों में ये प्राप्त नहीं होते। इसी तरह प्रत्येक हाथी के मस्तक में मुक्तामणि नहीं होती, हर एक वन में चन्दन के वृक्ष और सभी जगह साधु अर्थात् सज्जन पुरुष नहीं मिलते।

विशेष गुण वाली वस्तुओं को विशिष्ट स्थानों में ही खोजना पड़ता है।

पुत्राश्च विविधैः शीलैर्नियोज्याः सततं बुधैः।
नीतिज्ञाः शीलसम्पन्ना भवन्ति कुलपूजिताः।।

बुद्धिमान लोगों का कर्त्तव्य होता है कि वे अपनी संतान को अच्छे कार्य-व्यापार में लगाएं क्योंकि नीति के जानकार व सद्व्यवहार वाले व्यक्ति ही कुल में सम्मानित होते हैं।।10।।

आचार्य चाणक्य का विचार है कि माता-पिता को चाहिए कि वे अपने बच्चों को बचपन से ही अच्छे संस्कारों से युक्त करें, जिससे जीवन में उन्हें कोई कठिनाई न हो। अच्छे और श्रेष्ठ

संस्कारवान बच्चे ही अपने कुल का नाम रोशन करते हैं। समाज उन्हें सम्मानित करता है।

माता शत्रुः पिता वैरी येन बालो न पाठितः।
न शोभते सभामध्ये हंसमध्ये बको यथा॥

जो माता-पिता अपने बच्चों को नहीं पढ़ाते, वे उनके शत्रु हैं। ऐसे अपढ़ बालक सभा के मध्य में उसी प्रकार शोभा नहीं पाते, जैसे हसों के मध्य में बगुला शोभा नहीं पाता॥ 11॥

बच्चे देश का भविष्य होते हैं। किसी भी राष्ट्र का चरित्र, वहां के बच्चों में देखा जा सकता है। इसी बात को ध्यान में रखकर आचार्य चाणक्य ने माता-पिता को उनके बच्चों की ओर से सचेत किया है। माता-पिता का कर्त्तव्य है कि वे अपने बच्चों को अच्छी शिक्षा और संस्कार दिलाएं ताकि वे विद्वानों के मध्य बैठकर शोभा पा सकें। अपने संस्कारों और शिक्षा के तेज से ही वे शोभा पाते हैं। अन्यथा जैसे एक बगुला हंसों के बीच में शोभा नहीं पाता, उसी तरह मूर्ख और अनपढ़ बच्चे विद्वानों के मध्य शोभा नहीं पाते।

शिक्षा से विहीन व्यक्ति बिना पूंछ का जानवर ही कहलाता है। अपने बच्चों को शिक्षित न करने वाले माता-पिता उसके शत्रु हैं।

लालनाद् बहवो दोषास्ताडनाद् बहवो गुनाः।
तस्मात्पुत्रं च शिष्यं च ताडयेन्न तु लालयेत्॥

अत्यधिक लाड़-प्यार से पुत्र और शिष्य गुणहीन हो जाते हैं और ताड़ना से गुणी हो जाते हैं। भाव यही है कि शिष्य और पुत्र को यदि ताड़ना का भय रहेगा तो वे गलत मार्ग पर नहीं जाएंगे॥ 12॥

माता-पिता और गुरु की ताड़ना के पीछे पुत्र और शिष्य को ऊपर उठाने की भावना रहती है। वे उसे शारीरिक कष्ट

नहीं देना चाहते। यदि वे ऐसा करते भी हैं तो भीतर से उनका कोमल हृदय दु:खी होता है। माता-पिता और गुरु की मार-पिटाई के पीछे बच्चे का भविष्य छिपा होता है। यदि वे उसे अधिक लाड़-प्यार करें तो वह ढीठ होकर बिगड़ जाता है इसलिए उन्हें डांटना-फटकारना उनकी भलाई के लिए ही होता है।

श्लोकेन वा तदर्धेन पादेनैकाक्षरेण वा।
अबन्ध्यं दिवसं कुर्याद् दानाध्ययनकर्मभि:।।

एक श्लोक, आधा श्लोक, श्लोक का एक चरण, उसका आधा अथवा एक अक्षर ही सही या आधा अक्षर प्रतिदिन पढ़ना चाहिए।।13।।

आचार्य चाणक्य ने इस श्लोक के द्वारा शिक्षा के महत्त्व को दर्शाया है। उनका कहना है कि मानव-जीवन सभी जीवों में श्रेष्ठ है इसीलिए मनुष्य को अपना जीवन सफल बनाने के लिए अध्ययन, दूसरों की भलाई अथवा दान अवश्य करना चाहिए। उन्होंने यह भी कहा है कि जीवन का एक नियम बना लेना चाहिए कि प्रतिदिन चाहे हम आधा अक्षर ही पढ़ें, पर पढ़ें जरूर। स्वाध्याय से ही ज्ञान प्राप्त होता है और ज्ञान से ईश्वर की प्राप्ति होती है। शिक्षा से ही लोक-व्यवहार का रहस्य प्रकट होता है।

कान्तावियोग: स्वजनापमान: ऋणस्य शेषं कुनृपस्य सेवा।
दरिद्रभावो विषमा सभा च विनाग्निमेते प्रदहन्ति कायम्।।

स्त्री का वियोग, अपने लोगों से अनाचार, कर्ज का बंधन, दुष्ट राजा की सेवा, दरिद्रता और अपने प्रतिकूल सभा, ये सभी अग्नि न होते हुए भी शरीर को दग्ध कर देते हैं।।14।।

आचार्य चाणक्य का कहना है कि पत्नी का वियोग

आदमी को तोड़कर रख देता है। वह असहाय और अकेला रह जाता है। उसके दुःख–सुख का कोई साथी नहीं होता।

इसी तरह अपने ही लोगों के द्वारा अपमानित होना सर्वाधिक दुःख पहुंचाता है। व्यक्ति यदि कर्ज न चुका पाए तो उसे पग–पग पर अपमानित होना पड़ता है। जीवन में दरिद्र होने का दुःख सबसे बड़ा है। वह अपनी निर्धनता के कारण अपना सिर गर्व से नहीं उठा पाता।

इसी भांति जब आदमी अपने प्रतिकूल किसी सभा का आयोजन देखता है, अर्थात--समाज में उसे भला–बुरा कहा जाता है तो उसे मर्मान्तक पीड़ा होती है।

चाणक्य ने कहा कि ये चीजें यद्यपि आग नहीं हैं, पर इनके द्वारा आदमी का सम्पूर्ण व्यक्तित्व जलकर राख हो जाता है।

नदीतीरे च ये वृक्षाः परगेहेषु कामिनी।
मन्त्रिहीनाश्च राजानः शीघ्रं नश्यन्त्यसंशयम्।।

नदी के किनारे खड़े वृक्ष, दूसरे के घर में गई स्त्री, मंत्री के बिना राजा शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं। इसमें संशय नहीं करना चाहिए।।15।।

बरसात के दिनों में नदी में जब बाढ़ आती है, तब उसके किनारे खड़े वृक्ष उखड़कर पानी में गिर जाते हैं और बह जाते हैं। इसी प्रकार स्त्री यदि दूसरे के घर में रहेगी तो यह भरोसा नहीं कि वह कब भ्रष्ट हो जाए या पतन के मार्ग पर बढ़ जाए, अर्थात स्त्री को दूसरे के घर में नहीं रहने देना चाहिए।

इसी प्रकार जिस राजा को उचित सलाह देने वाला गुणी मंत्री नहीं होगा, वह राजा अपनी गलत हरकतों द्वारा शीघ्र ही नष्ट हो जाएगा। इसमें कदापि संदेह नहीं करना चाहिए।

बलं विद्या च विप्राणां राज्ञां सैन्यं बलं तथा।
वित्तं च वैश्यानां शूद्राणां परिचर्यका॥

ब्राह्मणों का बल विद्या है, राजाओं का बल उनकी सेना है, वैश्यों का बल उनका धन है और शूद्रों का बल छोटा बनकर रहना, अर्थात सेवा-कर्म करना है॥16॥

विद्याविहीन, ज्ञानरहित ब्राह्मण की कोई शक्ति नहीं होती, धन यदि वणिक (व्यापारी) के पास न हो तो वह व्यापार करने में असफल हो जाता है। इसलिए धन का होना उसके लिए परम आवश्यक है। इसी प्रकार यदि शूद्र व्यक्ति अपने सेवा कर्म से पीछे हटता है तो वह एक तरह से अपनी शक्ति को ही क्षीण करता है।

आचार्य चाणक्य ने भारतीय वर्ण-व्यवस्था, अर्थात ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र की शक्तियों का यहां परिचय दिया है। भले ही आज के युग में अपने-अपने कर्म से वर्ण-व्यवस्था की स्थिति को नकार दिया गया हो, पर प्राचीन काल से चली आ रही इस वर्ण-व्यवस्था के मूल में एक सुव्यवस्थित समाज की संरचना का रहस्य छिपा हुआ है।

निर्धनं पुरुषं वेश्या प्रजा भग्नं नृपं त्यजेत्।
खगाः वीतफलं वृक्षं भुक्त्वा चाऽभ्यागतो गृहम्॥

वेश्या निर्धन मनुष्य को, प्रजा पराजित राजा को, पक्षी फलरहित वृक्ष को व अतिथि उस घर को, जिसमें वे आमंत्रित किए जाते हैं, को भोजन करने के पश्चात छोड़ देते हैं॥17॥

आचार्य चाणक्य ने इस श्लोक में सहज अनुभवजन्य बातों को समझाया है। उनका कहना है कि जेब में जब धन न हो तब वेश्या के पास नहीं जाना चाहिए क्योंकि वेश्या को सिर्फ धन से ही मतलब होता है। यह वेश्या का स्वभाव ही है।

इसी प्रकार राजा के पराजित होकर अपमानित होने पर प्रजा भी उसका साथ छोड़ देती है। इसके अतिरिक्त जिस प्रकार फलरहित वृक्ष को त्यागकर पक्षी उड़ जाते हैं, उसी प्रकार अतिथि को भोजन करने के बाद गृहस्थ का घर छोड़ देना चाहिए। जो वस्तुएं गुणहीन हैं, वे त्याज्य हैं, उनका कभी साथ नहीं करना चाहिए।

गृहीत्वा दक्षिणां विप्रास्त्यजन्ति यजमानकम्।
प्राप्तविद्या गुरुं शिष्याः दग्धाऽरण्यं मृगास्तथा।।

ब्राह्मण दक्षिणा ग्रहण करके यजमान को, शिष्य विद्याध्ययन करने के उपरान्त अपने गुरु को और हिरण जले हुए वन को त्याग देते हैं।। 18।।

इस श्लोक में चाणक्य ने कहा है कि किसी प्रयोजन के लिए यदि कोई व्यक्ति किसी के पास जाता है तो उसे कार्य पूरा होते ही वह जगह छोड़ देनी चाहिए। उद्देश्य पूर्ति होने के बाद वहां रुकना किसी भी दृष्टि से उत्तम नहीं है।

दुराचारी च दुर्दृष्टिर्दुराऽऽवासी च दुर्जनः।
यन्मैत्री क्रियते पुम्भिर्नरः शीघ्रं विनश्यति।।

बुरा आचरण अर्थात दुराचारी के साथ रहने से, पाप दृष्टि रखने वाले का साथ करने से तथा अशुद्ध स्थान पर रहने वाले से मित्रता करने वाला शीघ्र नष्ट हो जाता है।। 19।।

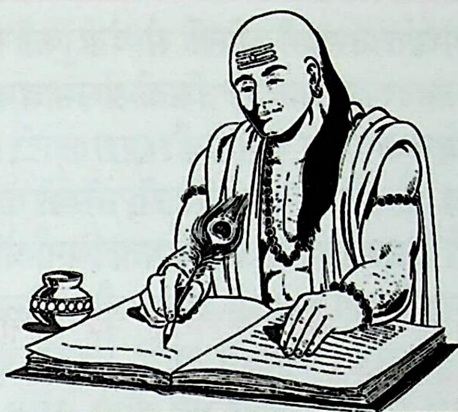
बुरी संगति का सदैव बुरा असर पड़ता है। यहां चाणक्य ने इसी ओर ध्यान खींचा है।

दुश्चरित्र व्यक्ति का साथ करने अथवा गलत जगहों पर जाने या रहने से मनुष्य का चरित्र नष्ट हो जाता है। जिस व्यक्ति का चरित्र नष्ट हो जाता है, वह जीवित होते हुए भी मरे हुए के समान है।

समाने शोभते प्रीतिः राज्ञि सेवा च शोभते।
वाणिज्यं व्यवहारेषु दिव्या स्त्री शोभते गृहे॥

मित्रता बराबर वालों में शोभा पाती है, नौकरी राजा की अच्छी होती है, व्यवहार में कुशल व्यापारी और घर में सुंदर स्त्री शोभा पाती है।।20।।

मित्रता कभी भी दो स्तर वालों में सफल नहीं होती। एक-सा स्वभाव, एक समान समाज में जीवन स्तर, एक-से कर्म दो व्यक्तियों के बीच में मित्रता के आधार हो सकते हैं। नौकरी हमेशा सरकारी अच्छी होती है क्योंकि इसमें स्थायित्व होता है। जो व्यापारी चतुर और व्यवहार-कुशल होता है, वह इस समाज में सम्मान का पात्र होता है और सुंदर स्त्री घर में ही शोभनीय होती है।



॥ अथ तृतीय अध्याय ॥

कस्य दोषः कुले नास्ति व्याधिना को न पीडितः।
व्यसनं केन न प्राप्तं कस्य सौख्यं निरन्तरम्॥

दोष किसके कुल में नहीं है? कौन ऐसा है, जिसे दुःख ने नहीं सताया? अवगुण किसे प्राप्त नहीं हुए? सदैव सुखी कौन रहता है?॥1॥

यह संसार दुःखों का सागर है। इस संसार में एक भी ऐसा व्यक्ति नहीं है, जिसे दुःख न हुआ हो। सभी व्यक्तियों में कुछ-न-कुछ दुःख, रोग और अवगुण अथवा कुछ-न-कुछ बुरी आदतें पाई जाती हैं। इस संसार में एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं है जो सदैव सुखी रहता हो। उसे किसी-न-किसी तरह के संकटों का, दुखों का, रोगों का, बुरी आदतों का सामना करना ही पड़ता है। दुःख और सुख तो साथ-साथ लगे ही रहते हैं। जैसे रात के बाद दिन और दिन के बाद रात आती है।

आचारः कुलमाख्याति देशमाख्याति भाषणम्।
सम्भ्रमः स्नेहमाख्याति वपुराख्याति भोजनम्॥

मनुष्य का आचरण-व्यवहार उसके खानदान को बताता

है, भाषण अर्थात उसकी बोली से देश का पता चलता है, विशेष आदर-सत्कार से उसके प्रेमभाव का तथा उसके शरीर से भोजन का पता चलता है।।2।।

मनुष्य के स्वभाव से, उसकी बातचीत से, उसके व्यवहार से और उसके शरीर से कितनी ही बातों का पता बिना परिचय के ही लगाया जा सकता है, जो आदमी शान्त और शील स्वभाव का होगा, जिसका आचरण, व्यवहार आदि सहृदय होगा, वह व्यक्ति निश्चित रूप से उच्च कुल का होगा, परंतु जिसका व्यवहार दुष्टता से भरा होगा, वह निश्चय ही नीच खानदान का होगा। इसी प्रकार आदमी की बोल-चाल से उसके स्थान का पता चल जाता है कि वह कहां का रहने वाला है, क्योंकि उसकी बोली में स्थानीय शब्दों का पुट आ जाता है। आदमी के आदर-सत्कार से उसके प्रेमभाव का पता चल जाता है कि वह सच्चा है अथवा झूठा या दिखावटी है। इसी तरह आदमी के स्वस्थ और दुबले-पतले शरीर को देखकर ही अंदाजा लगाया जा सकता है कि यह आदमी कैसी खुराक खाता होगा।

ये सभी सामान्य बातें हैं। कभी-कभी अति मृदु व्यवहार करने वाला व्यक्ति अत्यन्त दुष्ट व चालाक निकलता है और अत्यधिक दुबला-पतला व्यक्ति बहुत ज्यादा खाना खाता है। अपवाद सभी जगह मिल जाते हैं।

सुकुले योजयेत्कन्यां पुत्रं विद्यासु योजयेत्।
व्यसने योजयेच्छत्रुं मित्रं धर्मे नियोजयेत्।।

कन्या का विवाह अच्छे कुल में करना चाहिए। पुत्र को विद्या के साथ जोड़ना चाहिए। दुश्मन को विपत्ति में डालना चाहिए और मित्र को अच्छे कार्यों में लगाना चाहिए।।3।।

आचार्य चाणक्य का कथन है कि समझदार व्यक्ति

अपनी पुत्री का विवाह वर पक्ष के खानदान को अच्छी तरह परखकर ही करता है। वह अपने पुत्र को अच्छी और उच्च शिक्षा प्रदान करता है या कराता है। शत्रु यदि निकट आ जाए तो उसे विपत्ति में डाल देता है और अपने प्रिय मित्र को वह अच्छे और महत्त्वपूर्ण कार्यों में लगाता है।

दुर्जनस्य च सर्पस्य वरं सर्पो न दुर्जनः।
सर्पो दंशति कालेन दुर्जनस्तु पदे पदे॥

दुर्जन और सर्प के सामने आने पर सर्प का वरण करना उचित है, न कि दुर्जन का, क्योंकि सर्प तो एक ही बार डसता है, परंतु दुर्जन व्यक्ति कदम-कदम पर बार-बार डसता है।।4।।

आचार्य चाणक्य ने कहा है कि सर्प और दुष्ट व्यक्ति में से यदि किसी का चुनाव करना पड़ जाए तो सर्प का ही चुनाव करना चाहिए न कि दुष्ट व्यक्ति का, क्योंकि सांप तो एक ही बार डसकर छोड़ देगा, परंतु दुष्ट व्यक्ति जीवन-भर कष्ट पहुंचाता रहेगा। इसका भाव यही है कि सांप तो तभी काटेगा, जब उसके ऊपर बेध्यानी में पांव पड़ जाए और उसे आपके द्वारा कष्ट पहुंचे, लेकिन दुष्ट व्यक्ति अपनी आदत के अनुसार बिना कारण के भी कष्ट पहुंचाता रहेगा।

एतदर्थं कुलीनानां नृपाः कुर्वन्ति संग्रहम्।
आदिमध्याऽवसानेषु न त्यजन्ति च ते नृपम्॥

इसीलिए राजा खानदानी लोगों को ही अपने पास एकत्र करता है क्योंकि कुलीन अर्थात अच्छे खानदान वाले लोग प्रारम्भ में, मध्य में और अंत में, राजा को किसी दशा में भी नहीं त्यागते।।5।।

भाव यही है कि खानदानी अर्थात कुलीन वंश के लोगों का यह स्वाभाविक गुण होता है कि वे सम-विषम स्थितियों में भी राजा का साथ नहीं छोड़ते। राजा के हर सुख-दुःख में

वे सदैव साथ रहते हैं और राजा के प्रति अपनी स्वामिभक्ति को नहीं छोड़ते।

कुलीन वंश के लोग किसी भी परिस्थिति में अपनी वफादारी पर कभी आंच नहीं आने देते।

प्रलये भिन्नमर्यादा भवन्ति किल सागराः।
सागरा भेदमिच्छन्ति प्रलयेऽपि न साधवः।।

प्रलय काल में सागर भी अपनी मर्यादा को नष्ट कर डालते हैं परंतु साधु लोग प्रलय काल के आने पर भी अपनी मर्यादा को नष्ट नहीं होने देते।।6।।

समुद्र की मर्यादा प्रसिद्ध है कि उसमें कितना ही जल गिरता जाए, पर वह अपनी मर्यादा नहीं छोड़ता, लेकिन प्रलय काल में सागर की मर्यादा भी छिन्न-भिन्न होकर बिखर जाती है, मगर साधु पुरुष अपने कर्त्तव्य पथ से कभी नहीं हटते। अतः सागर की विशालता साधु पुरुष के हृदय की विशालता के सामने तुच्छ है।

बड़ी-बड़ी भयानक लहरें धरती को लील जाती हैं, परंतु साधु पुरुष कठिन-से-कठिन परिस्थिति में भी अपनी मर्यादा को नहीं छोड़ते इसीलिए साधु पुरुष को सागर से भी गंभीर और मर्यादित माना गया है।

मूर्खस्तु परिहर्तव्यः प्रत्यक्षो द्विपदः पशुः।
भिनत्ति वाक्शल्येन अदृष्टः कण्टको यथा।।

मूर्ख व्यक्ति से बचना चाहिए। वह प्रत्यक्ष में दो पैरों वाला पशु है। जिस प्रकार बिना आंख वाले अर्थात अंधे व्यक्ति को कांटे भेदते हैं, उसी प्रकार मूर्ख व्यक्ति अपने कटु व अज्ञान से भरे वचनों से भेदता है।।7।।

मूर्ख व्यक्ति का कभी साथ नहीं करना चाहिए। वह बिना

सींग वाला, दो पैरों से चलने वाला पशु है, अर्थात मूर्ख और बुद्धिहीन है। जिस प्रकार दिखाई न देने पर कांटे अंधे व्यक्ति के शरीर में चुभकर पीड़ा पहुंचाते हैं, उसी प्रकार अज्ञानता से भरे मूर्ख व्यक्ति के वचनों को सुनकर मार्मिक पीड़ा होती है। ऐसे व्यक्ति को छोड़ना ही उत्तम है।

रूप यौवन सम्पन्नाः विशालकुलसंभवाः।
विद्याहीना न शोभन्ते निर्गन्धा इव किंशुकाः।।

रूप और यौवन से सम्पन्न तथा उच्च कुल में जन्म लेने वाला व्यक्ति भी यदि विद्या से रहित है तो वह बिना सुगंध के फूल की भांति शोभा नहीं पाता।।8।।

भाव यही है कि आदमी की शोभा उसके सुंदर रूप, यौवन और उच्च कुल में जन्म लेने से नहीं है। उसकी शोभा उसकी विद्वता से है, उसके ज्ञान से है। यदि वह मूर्ख है, अज्ञानी है और किसी श्रेष्ठ कुल में उसका जन्म हुआ है, तब भी उसकी कोई मान्यता समाज में नहीं होती। आचार्य चाणक्य का कहना यही है कि आदमी के वंश की, उसके रूप-यौवन की, उसकी शक्ति-संपदा की तभी शोभा होती है, जब वह व्यक्ति विद्वान होता है। अन्यथा तो गंध-रहित पुष्प की भांति उसकी शोभा और सम्मान बनावटी होता है।

कोकिलानां स्वरो रूपं स्त्रीणां रूपं पतिव्रतम्।
विद्या रूपं कुरूपाणां क्षमा रूपं तपस्विनाम्।।

कोयल की शोभा उसके स्वर में है, स्त्री की शोभा उसका पतिव्रत धर्म है, कुरूप व्यक्ति की शोभा उसकी विद्वता में है और तपस्वियों की शोभा क्षमा में है।।9।।

कोयल की सुरीली तान (स्वर) ही उसकी शोभा अर्थात उसका सौंदर्य है। पतिव्रत धर्म ही स्त्री का सौंदर्य है,

अर्थात जो स्त्री अपने पति के प्रति पूरी तरह समर्पित है, जो भूलकर भी पर-पुरुष का ध्यान अपने मन में नहीं लाती, वह स्त्री रूप और गुणों में सर्वोत्तम है। व्यक्ति यदि कुरूप है, पर विद्वान है तो उसकी वह विद्वता ही उसका सौंदर्य है। जैसे महाज्ञानी अष्टावक्र शरीर से कुरूप होते हुए भी महाज्ञानी कहलाए और राजा जनक की सभा में सबसे अधिक सम्मानित हुए। इसी प्रकार जो तपस्वी सहृदय है, संवेदनशील है, क्षमा करना जानता है, वह अपनी इस सदाशयता के कारण ही शोभित होता है।

त्यजेदेकं कुलस्यार्थे ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत्।
ग्रामं जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत्।।

किसी एक व्यक्ति को त्यागने से यदि कुल की रक्षा होती हो तो उस एक को छोड़ देना चाहिए। पूरे गांव की भलाई के लिए कुल को तथा देश की भलाई के लिए गांव को और अपने आत्म-सम्मान की रक्षा के लिए सारी पृथ्वी को छोड़ देना चाहिए।।10।।

आचार्य चाणक्य ने यहां एक के सामने अनेक को महत्त्व दिया है। उनका कहना है कि यदि एक व्यक्ति के बलिदान से कुल का सम्मान बचता हो तो उसे बलिदान होने से नहीं रोकना चाहिए।

यदि ग्राम की अस्मिता को बचाने के लिए पूरे परिवार का त्याग करना पड़े तो उसे छोड़ देना चाहिए और यदि देश के सम्मान की रक्षा के लिए ग्राम को त्यागना पड़े तो ग्राम का त्याग कर देना चाहिए। प्राय: सरहद पर युद्ध छिड़ जाने से सरहद के गांवों को खाली करा लिया जाता है। इसके अतिरिक्त आचार्य ने आत्म-सम्मान को सर्वोपरि माना है।

उद्योगे नास्ति दारिद्र्यं जपतो नास्ति पातकम्।
मौने च कलहो नास्ति, नास्ति जागरिते भयम्।।

उद्योग–धंधा करने पर निर्धनता नहीं रहती। प्रभु नाम का जप करने वाले का पाप नष्ट हो जाता है। चुप रहने अर्थात सहनशीलता रखने पर लड़ाई–झगड़ा नहीं होता और जो जागता रहता है अर्थात सदैव सजग रहता है उसे कभी भय नहीं सताता।।11।।

जो व्यक्ति कर्मठ हैं, परिश्रमी हैं, उद्योग–धंधा करने में आलसी नहीं हैं, निर्धनता उनके निकट नहीं आती। वे सदैव सुखी और प्रसन्न रहते हैं। परिश्रम द्वारा वे सुख–सम्पत्ति अर्जित करते हैं।

जो प्रभु को पूरी तरह समर्पित होकर उसके नाम का निरंतर जाप करते हैं, उसे स्मरण करते रहते हैं, उनके सभी पाप स्वतः ही नष्ट हो जाते हैं।

क्रोध अर्थात पलटकर आक्रमण होने से सदैव झगड़ा बढ़ता है। यदि व्यक्ति दूसरे की कटु बात का जवाब न दे और सहनशील बना रहे तो सामने वाले का क्रोध स्वतः ही नष्ट हो जाता है। झगड़ा बढ़ नहीं पाता। झगड़ा तभी बढ़ता है जब ईंट का जवाब पत्थर से दिया जाता है। जो व्यक्ति जीवन में सावधान रहता है, उसे कभी भय नहीं सताता। भाव यही है कि परिश्रम से समृद्धि आती है, प्रभु स्मरण से पापों का नाश होता है, सहनशीलता से संघर्ष का अंत होता है और सजगता से भय कभी नहीं होता।

अतिरूपेण वै सीता अतिगर्वेण रावणः।
अतिदानं बलिर्दत्वा अति सर्वत्र वर्जयेत्।।

अति सुंदर होने के कारण सीता का हरण हुआ, अत्यंत अहंकार के कारण रावण मारा गया, अत्यधिक दान के कारण राजा बलि बांधा गया। अतः सभी के लिए अति ठीक नहीं है। 'अति सर्वथा वर्जयेत्।' अति को सदैव छोड़ देना चाहिए।।12।।

हर चीज की एक सीमा होती है, मर्यादा होती है। सीमा से बाहर जाने पर प्रायः नुकसान ही होता है। उदाहरण देते हुए चाणक्य ने बताया कि अनुपम सुंदरी होने के कारण सीता का हरण हुआ और अति अहंकारी होने के कारण रावण का वध हुआ।

इसी तरह असुरराज बलि ने दान का वचन देकर वामन को अपना सर्वस्व दान कर दिया।

कथा इस प्रकार है, प्रह्लाद पुत्र बलि बड़ा दानवीर था। देवता उससे भयभीत रहते थे। विष्णु भगवान ने वामन अंगुल का रूप धारण करके बलि से तीन पग भूमि मांगी। बलि ने हंसकर तीन पग भूमि देने का वचन दे दिया।

तब भगवान विष्णु ने दो पग में तीनों लोक नाप लिए और तीसरा पग बलि के शरीर पर रखकर उसे पाताल भेज दिया।

को हि भारः समर्थानां किं दूरं व्यवसायिनाम्।
को विदेशः सविद्यानां कः परः प्रियवादिनाम्।।

समर्थ को भार कैसा? व्यवसायी के लिए कोई स्थान दूर क्या? विद्वान के लिए विदेश कैसा? मधुर वचन वाले का शत्रु कौन?।।13।।

समर्थ व्यक्ति कोई भी कार्य सहज ही कर लेता है। उसे कोई भी कार्य भार स्वरूप नहीं लगता। व्यवसायी व्यक्ति अपने व्यवसाय के लिए कहीं भी जा सकता है। वह स्थान की दूरी को नहीं, अपने लाभ को देखता है।

इसी तरह विद्वान व्यक्ति के विदेश में भी लाखों मित्र होते हैं। उसे परदेस में कोई कठिनाई नहीं होती। मधुर वचन बोलने वाला व्यक्ति कभी दूसरों के प्रति ईर्ष्या नहीं रखता, सभी को समान भाव से देखता है, उसका कोई शत्रु नहीं होता। अतः सब उसके मित्र बन जाते हैं।

एकेनाऽपि सुवृक्षेण पुष्पितेन सुगन्धिना।
वासितं तद्वनं सर्वं सुपुत्रेण कुलं यथा।।

एक ही सुगन्धित फूल वाले वृक्ष से जिस प्रकार सारा वन सुगन्धित हो जाता है, उसी प्रकार एक सुपुत्र से सारा कुल सुशोभित हो जाता है।।14।।

अच्छे गुण सभी जगह प्रशंसित होते हैं। उनकी लोक प्रसिद्धि सुगन्धित पुष्प की भांति सभी जगह फैल जाती है। किसी कुल का एक सुपुत्र सारे कुल को सम्मानित करा देता है।

एकेन शुष्कवृक्षेण दह्यमानेन वह्निना।
दह्यते तद्वनं सर्वं कुपुत्रेण कुलं तथा।।

आग से जलते हुए सूखे वृक्ष से सारा वन जल जाता है जैसे कि एक कुपुत्र से कुल का नाश हो जाता है।।15।।

कुल का विनाश करने के लिए एक ही कुपुत्र काफी होता है। ठीक उसी प्रकार जैसे एक जलता हुआ वृक्ष पूरे वन को जलाकर खाक कर देता है। भाव यही है कि सद्गृहस्थ को अपनी संतान पर पूरा ध्यान रखना चाहिए।

एकेनापि सुपुत्रेण विद्यायुक्तेन साधुना।
आह्लादितं कुलं सर्वं यथा चन्द्रेण शर्वरी।।

जिस प्रकार चन्द्रमा से रात्रि की शोभा होती है, उसी प्रकार एक सुपुत्र, अर्थात साधु प्रकृति वाले पुत्र से कुल आनन्दित होता है।।16।।

किसी परिवार में यदि साधु प्रकृति का विद्वान पुत्र उत्पन्न होता है तो वह अपनी विद्वता से पूरे परिवार को और समाज को उसी प्रकार से आनन्दित कर देता है, जैसे चन्द्रमा अपनी शीतल चांदनी से रात्रि को जगमग कर देता है।

किं जातैर्बहुभिः पुत्रैः शोकसन्तापकारकैः।
वरमेकः कुलाऽऽलम्बी यत्र विश्राम्यते कुलम्।।

शोक और दुःख देने वाले बहुत-से पुत्रों को पैदा करने से क्या लाभ है? कुल को आश्रय देने वाला तो एक पुत्र ही सबसे अच्छा होता है।।17।।

महाभारत में धृतराष्ट्र के सौ पुत्र थे, पर सभी ने उसे दुःख ही पहुंचाया। वे सभी महाभारत युद्ध के कारण बने। जबकि पांच पाण्डवों ने धर्म के मार्ग पर चलकर विजय श्री प्राप्त की और वंश का नाम सुशोभित किया। यहां चाणक्य ने हजार दुर्गुणों पर एक ही श्रेष्ठता को महत्त्व दिया है। एक श्रेष्ठ और गुणी पुत्र सौ दुष्ट पुत्रों से अच्छा होता है। दुःख देने वाले कई पुत्रों से कुल के नाम को बढ़ाने वाला तथा सहारा देने वाला एक ही पुत्र काफी होता है।

लालयेत् पंच वर्षाणि दश वर्षाणि ताडयेत्।
प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रं मित्रवदाचरेत्।।

पुत्र से पांच वर्ष तक प्यार करना चाहिए। उसके बाद दस वर्ष तक अर्थात पंद्रह वर्ष की आयु तक उसे दंड आदि देते हुए अच्छे कार्य की ओर लगाना चाहिए। सोलहवां साल आने पर मित्र जैसा व्यवहार करना चाहिए। संसार में जो कुछ भी भला-बुरा है, उसका उसे ज्ञान कराना चाहिए।।18।।

इस प्रकार एक पिता अपने पुत्र के जीवन को भली-भांति सवांर सकता है और उसे गलत मार्ग पर बढ़ने से रोक सकता है।

उपसर्गेऽन्यचक्रे च दुर्भिक्षे च भयावहे।
असाधुजनसम्पर्केयः पलायेत् सः जीवति।।

देश में भयानक उपद्रव होने पर, शत्रु के आक्रमण के

समय, भयानक दुर्भिक्ष (अकाल) के समय, दुष्ट का साथ होने पर, जो भाग जाता है, वही जीवित रहता है।।19।।

दैवीय उत्पात के समय, शत्रु के आक्रमण के समय, अकाल पड़ने पर और दुष्ट का साथ होने पर व्यक्ति को अपना बचाव करना चाहिए तभी प्राण रक्षा संभव है।

धर्मार्थकाममोक्षाणां यस्यैकोऽपि न विद्यते।
जन्म-जन्मनि मर्त्येषु मरणं तस्य केवलम्।।

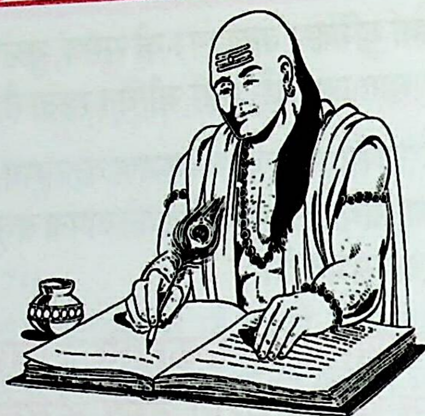
जिसके पास धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, इनमें से एक भी नहीं है, उसके लिए जन्म लेने का फल केवल मृत्यु ही होता है।।20।।

आचार्य चाणक्य ने यहां धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की महत्ता पर प्रकाश डाला है। धर्म से सद्कर्मों की प्रेरणा प्राप्त होती है, अर्थ से जीवन समृद्ध होता है, काम जीवन की शाश्वत अनिवार्यता है और मोक्ष के द्वारा मनुष्य जीवन-मृत्यु के आवागमन से मुक्त हो जाता है। ये सब मनुष्य जीवन में ही संभव है। मानव जीवन अत्यंत दुर्लभ है इसीलिए ऋषि-मुनियों ने जीवन के इन चार श्रेष्ठ तत्त्वों का विवेचन किया है।

मूर्खा यत्र न पूज्यंते धान्यं यत्र सुसञ्चितम्।
दाम्पत्योः कलहो नास्ति तत्र श्रीः स्वयमागता।।

जहां मूर्खों का सम्मान नहीं होता, जहां अन्न भंडार सुरक्षित रहता है, जहां पति-पत्नी में कभी झगड़ा नहीं होता, वहां लक्ष्मी बिना बुलाए ही निवास करती हैं।।21।।

भाव यह है कि जिस देश में मूर्खों की जगह विद्वानों का सम्मान होता है, जहां समुचित अन्न भंडार रहता है, जहां परिवार और घर-गृहस्थी में प्यार बना रहता है, वहां सुख-समृद्धि बराबर बनी रहती है।



॥ अथ चतुर्थ अध्याय ॥

आयुः कर्म च वित्तं च विद्या निधनमेव च।
पंचैतानि हि सृज्यन्ते गर्भस्थस्यैव देहिनः॥

यह निश्चित है कि शरीरधारी जीव के गर्भकाल में ही आयु, कर्म, धन, विद्या, मृत्यु, इन पांचों की सृष्टि साथ-ही-साथ हो जाती है॥1॥

इस नीति के द्वारा चाणक्य मानव-जीवन की सभी बातों को पूर्व निर्धारित मानते हैं। उनका मत है कि मनुष्य जीवन की अवधि, मृत्यु, सुख-दुःख, मान-अपमान, विद्या और सम्पत्ति का भोग सभी कुछ ईश्वर के अधीन है। बिना उसकी मर्जी के पत्ता तक नहीं हिलता। अतः सब कुछ उस पर छोड़कर मनुष्य को अपने कर्म में प्रवृत्त हो जाना चाहिए।

साधुभ्यस्ते निवर्तन्ते पुत्रा मित्राणि बान्धवाः।
ये च तैः सह गन्तारस्तद्धर्मात्सुकृतं कुलम्॥

साधु-महात्माओं के संसर्ग से पुत्र, मित्र, बंधु और जो अनुराग करते हैं, वे संसार-चक्र से छूट जाते हैं और उनके कुल-धर्म से उनका कुल उज्ज्वल हो जाता है॥2॥

भाव यह है कि जिस कुल में साधु–महात्मा जैसा कोई पुत्र उत्पन्न हो जाता है, उसके संसर्ग से बाकी सभी लोगों का भी सांस्कारिक परिष्कार हो जाता है।

दर्शनध्यानसंस्पर्शैर्मत्सी कूर्मी च पक्षिणी।
शिशुं पालयते नित्यं तथा सज्जनसंगतिः॥

जिस प्रकार मछली देख–रेख से, कछुवी चिड़िया स्पर्श से (चोंच द्वारा) सदैव अपने बच्चों का पालन–पोषण करती हैं, वैसे ही अच्छे लोगों के साथ से सर्व प्रकार से रक्षा होती है॥3॥

यहां चाणक्य ने सद्–संगति पर जोर दिया है। अच्छे लोगों का साथ होने पर किसी प्रकार की हानि नहीं होती। सज्जनों का साथ सदैव सुखकारी और हितरक्षक होता है।

यावत्स्वस्थो ह्ययं देहो यावन्मृत्युश्च दूरतः।
तावदात्महितं कुर्यात् प्राणान्ते किं करिष्यति॥

यह नश्वर शरीर जब तक निरोग व स्वथ है या जब तक मृत्यु नहीं आती, तब तक मनुष्य को अपने सभी पुण्य–कर्म कर लेने चाहिए क्योंकि अंत समय आने पर वह क्या कर पाएगा॥4॥

समय किसी की प्रतीक्षा नहीं करता। समय गुजरता जाता है इसीलिए किसी कार्य को कल पर नहीं छोड़ना चाहिए। कहा भी है—'कल करे सो आज कर, आज करे सो अब। पल में परलय होएगी, फेर करेगा कब ?' अतः समय का कोई भरोसा नहीं। जो पुण्य–कर्म करने हैं, अभी कर लेने चाहिए, फिर समय नहीं मिलेगा।

कामधेनुगुणा विद्या ह्यकाले फलदायिनी।
प्रवासे मातृसदृशी विद्या गुप्तं धनं स्मृतम्॥

विद्या कामधेनु के समान सभी इच्छाएं पूर्ण करने वाली

है। विद्या से सभी फल समय पर प्राप्त होते हैं। परदेस में विद्या माता के समान रक्षा करती है। विद्वानों ने विद्या को गुप्त धन कहा है, अर्थात विद्या वह धन है जो आपातकाल में काम आती है। इसका न तो हरण किया जा सकता है न ही इसे चुराया जा सकता है।।5।।

विद्या सभी प्रकार से सुरक्षित और समय पड़ने पर रक्षा करने वाली है। इसे जितना दिया जाता है, यह उतनी ही बढ़ती है। इससे बड़ा धन कोई दूसरा नहीं है। इसे न ही कोई छीन सकता और न ही कोई आपस में बांट सकता।

वरमेको गुणी पुत्रो निर्गुणैश्च शतैरपि।
एकश्चन्द्रस्तमो हन्ति न च ताराः सहस्रशः।।

सैकड़ों अज्ञानी पुत्रों से एक ही गुणवान पुत्र अच्छा है। रात्रि का अंधकार एक ही चंद्रमा दूर करता है, न कि हजारों तारें।।6।।

इसी प्रकार के तीन श्लोक अध्याय तीन में संख्या 14, 16 और 17 भी हैं। आचार्य चाणक्य ने इस प्रकार बार-बार गुणी पुत्र के होने की बात कही है। गुणी पुत्र जीवन-भर सुख देने वाला होता है।

मूर्खश्चिरायुर्जातोऽपि तस्माज्जातमृतो वरः।
मृतः स चाल्पदुःखाय यावज्जीवं जडो दहेत्।।

बहुत बड़ी आयु वाले मूर्ख पुत्र की अपेक्षा पैदा होते ही जो मर गया, वह अच्छा है क्योंकि मरा हुआ पुत्र कुछ देर के लिए ही कष्ट देता है, परंतु मूर्ख पुत्र जीवन-भर जलाता है।।7।।

मूर्ख पुत्र के विषय में चाणक्य ने अध्याय तीन में श्लोक संख्या 15 में भी यही बात कही है। मूर्ख पुत्र जीवन-भर का दुःख होता है।

कुग्रामवासः कुलहीनसेवा कुभोजनं क्रोधमुखी च भार्या।
पुत्रश्च मूर्खो विधवा च कन्या विनाग्निना षट् प्रदहन्ति कायम्॥

बुरे ग्राम का वास, नीच कुल की सेवा, बुरा भोजन, झगड़ालू स्त्री, मूर्ख लड़का, विधवा कन्या, ये छः बिना अग्नि के भी शरीर को जला देते हैं॥8॥

चाणक्य का कथन है कि ऐसे गांव में कभी नहीं रहना चाहिए, जहां के लोग दुःख में साथ देने वाले न हों। नीच व्यक्ति की नौकरी में सदैव अपमान ही झेलना पड़ता है। खराब भोजन स्वास्थ्य को खराब कर देता है। कलह करने वाली स्त्री परिवार को नर्क बना देती है, मूर्ख पुत्र अपनी अज्ञानता से बार-बार मुसीबतें खड़ी करने वाला होता है और घर में विधवा बेटी का दुःख जीवन-भर जलाता रहता है। ये छः बिना अग्नि के भी जीवन-भर शरीर को चिंता की अग्नि से जलाते रहते हैं।

किं तया क्रियते धेन्वा या न दोग्ध्री न गुर्विणी।
कोऽर्थः पुत्रेण जातेन यो न विद्वान् न भक्तिमान्॥

उस गाय से क्या लाभ, जो न बच्चा जने और न दूध ही दे। ऐसे पुत्र के जन्म लेने से क्या लाभ, जो न तो विद्वान हो, न किसी देवता का भक्त हो॥9॥

भाव यह है कि दूध देने वाली गाय के समान ही ऐसे पुत्र की कामना की गई है जो विद्वान भी हो और ईश्वर में आस्था रखने वाला भी हो।

ऐसा पुत्र सदैव सुख देने वाला और मां-बाप का नाम रोशन करने वाला होता है।

संसारतापदग्धानां त्रयो विश्रान्तिहेतवः।
अपत्यं च कलत्रं च सतां संगतिरेव च॥

इस संसार में दुःखों से दग्ध प्राणी को तीन बातों से

सुख-शान्ति प्राप्त हो सकती है—सुपुत्र से, पतिव्रता स्त्री से और सद्संगति से।। 10।।

संसार दु:खों का सागर है। यहां हर पल कोई-न-कोई दु:ख मनुष्य को सताता ही रहता है। ऐसे दु:खमय संसार में यदि उसे सुपुत्र, पतिव्रता स्त्री और सज्जनों की संगति मिल जाए तो उसे चिंता, दु:ख व अशान्ति से बहुत राहत मिल सकती है।

सकृज्जल्पन्ति राजानः सकृज्जल्पन्ति पण्डिताः।
सकृत् कन्याः प्रदीयन्ते त्रीण्येतानि सकृत्सकृत्।।

राजा लोग एक ही बार बोलते हैं (आज्ञा देते हैं), पंडित लोग किसी कर्म के लिए एक ही बार बोलते हैं (बार-बार श्लोक नहीं पढ़ते), कन्याएं भी एक ही बार दी जाती हैं। ये तीन एक ही बार होने से विशेष महत्त्व रखते हैं।। 11।।

राजा का, विद्वान का और कन्या के पिता का वचन अथवा कथन अटल होता है। इनके वचन लौटाए नहीं जा सकते। इसी प्रकार अच्छे कर्म के लिए बार-बार नहीं कहा जाता।

एकाकिना तपो द्वाभ्यां पठनं गायनं त्रिभिः।
चतुर्भिर्गमनं क्षेत्रं पंचभिर्बहुभी रणः।।

तपस्या अकेले में, अध्ययन (पढ़ाई) दो के साथ, गाना तीन के साथ, यात्रा चार के साथ, खेती पांच के साथ और युद्ध बहुत से सहायकों के साथ होने पर ही उत्तम होता है।। 12।।

आचार्य चाणक्य ने उक्त श्लोक के माध्यम से जानकारी दी है कि मनुष्य को तप अर्थात ईश्वरभक्ति करनी हो तो उसे एकांत स्थान खोजना चाहिए। अध्ययन दो व्यक्ति मिलकर करें। मिलकर अध्ययन करने का लाभ यह है कि आपस में अध्ययन संबंधी विषय पर विचार-विमर्श भी साथ-साथ चलता रह सकता है। गाने के विषय में तीन लोगों की महत्ता

इसलिए है कि स्वर के उतार–चढ़ाव के लिए एक से अधिक गले की, तीन की आवश्यकता होती है तभी सही लय–सुर बन पाता है। यात्रा के लिए चार व्यक्तियों की आवश्यकता इसलिए होती है ताकि चारों दिशाओं के खतरे के प्रति सावधान रहा जा सके। खेत बोने के लिए पांच व्यक्तियों की आवश्यकता इसलिए बताई गई है ताकि चारों कोने और बीच का भाग सही तरह से बोया जा सके। युद्ध के लिए सेना का महत्त्व सभी जानते हैं।

सा भार्या या शुचिर्दक्षा सा भार्या या पतिव्रता।
सा भार्या या पतिप्रीता सा भार्या सत्यवादिनी।।

पत्नी वही है जो पवित्र और चतुर है, पतिव्रता है, पत्नी वही है जिस पर पति का प्रेम है, पत्नी वही है जो सदैव सत्य बोलती है।।13।।

यहां आचार्य चाणक्य ने पत्नी के श्रेष्ठ स्वरूप के बारे में बताते हुए कहा है कि जो पत्नी समय पर चतुराई से काम निकालना जानती है और जो सदैव अपने पति के प्रति समर्पित, पवित्र, पतिव्रता, पति प्रेम की पात्रा और सच बोलने वाली है, वही सच्ची पत्नी है।

अपुत्रस्य गृहं शून्यं दिशः शून्यास्त्वबांधवाः।
मूर्खस्य हृदयं शून्यं सर्वशून्या दरिद्रता।।

बिना पुत्र के घर सूना है। बिना बंधु–बांधवों के दिशाएं सूनी हैं। मूर्ख का हृदय भावों से सूना है। दरिद्रता सबसे सूनी है, अर्थात दरिद्रता का जीवन महाकष्टकारक है।।14।।

पुत्र के बिना वंश–बेल सूख जाती है। पिता को अपना ही घर सूना लगने लगता है। बंधु–बांधवों के न होने पर वह कहीं आ–जा नहीं सकता, सारी दिशाएं उसे सूनी लगने लगती हैं। मूर्ख

के हृदय में संवेदनशीलता की शून्यता बनी रहती है। वह किसी के सुख-दुःख में हिस्सा नहीं लेता।

गरीबी के कारण निर्धन का कोई मित्र नहीं होता। यही कारण है कि उसे सारा संसार और अपना जीवन व्यर्थ दिखाई देने लगता है। तात्पर्य यह है कि जिसके पास धन नहीं है, उसके लिए दुनिया का प्रत्येक कोना सूना है।

अनभ्यासे विषं शास्त्रमजीर्णे भोजनं विषम्।
दरिद्रस्य विषं गोष्ठी वृद्धस्य तरुणी विषम्।।

बार-बार अभ्यास न करने से विद्या विष बन जाती है। बिना पचा भोजन विष बन जाता है, दरिद्र के लिए स्वजनों की सभा या साथ और वृद्धों के लिए युवा स्त्री विष के समान होती है।।15।।

अभ्यास से ही शिक्षा (विद्या) का विकास होता है। जो भोजन पचता नहीं, वह शरीर पर कुप्रभाव डालता है। एक दरिद्र परिजन अपने ही लोगों को विष के समान दिखलाई पड़ने लगता है। उन्हें वह भार स्वरूप दिखाई देने लगता है। यदि किसी वृद्ध को युवा स्त्री मिल जाए तो वह उसे संतुष्ट न करने की स्थिति में जहर दिखाई देने लगती है। प्रत्येक वस्तु का अपना उचित स्थान और महत्त्व होता है।

त्यजेद्धर्मं दयाहीनं विद्याहीनं गुरुं त्यजेत्।
त्यजेत्क्रोधमुखीं भार्यां निःस्नेहान् बान्धवांस्त्येजेत्।।

दयाहीन धर्म को छोड़ दो, विद्याविहीन गुरु को छोड़ दो, झगड़ालू और क्रोधी स्त्री को छोड़ दो और स्नेहविहीन बंधु-बांधवों को छोड़ दो।।16।।

भाव यह है कि ऐसे धर्म को कभी नहीं अपनाना चाहिए,

जिसमें प्राणी-मात्र के लिए दया-भाव न हो। ऐसे गुरु को नहीं अपनाना चाहिए, जिसमें विद्वता न हो। ऐसी पत्नी को स्वीकार नहीं करना चाहिए जो क्रोधी स्वभाव की हो और कलह करने वाली हो। साथ ही ऐसे परिजनों से संबंध नहीं रखना चाहिए जो दुःख-सुख में काम न आते हों।

अध्वा जरा मनुष्याणां वाजिनां बंधनं जरा।
अमैथुनं जरा स्त्रीणां वस्त्राणामातपो जरा॥

बहुत ज्यादा पैदल चलना मनुष्यों को बुढ़ापा ला देता है, घोड़ों को एक ही स्थान पर बांधे रखना और स्त्रियों के साथ पुरुष का समागम (मैथुन) न होना और वस्त्रों को लगातार धूप में डाले रखने से बुढ़ापा आ जाता है।। 17।।

निरन्तर यात्रा करते रहने से खान-पान और शरीर को आराम नहीं मिल पाता। इससे शरीर थककर चूर-चूर हो जाता है। युवावस्था की उमंग क्षीण हो जाती है। घोड़ों को यदि घुमाया-फिराया न जाए तो वे आलसी हो जाते हैं। आलस्य शरीर को शिथिल कर देता है। स्त्री-पुरुष का समागम स्वाभाविक क्रिया है। यदि स्त्री अथवा पुरुष इससे वंचित रह जाएं तो उन्हें बुढ़ापा घेर लेता है। वस्त्रों के धूप में पड़े रहने से वे पुराने पड़कर जर-जर हो जाते हैं।

कः कालः कानि मित्राणि को देशः कौ व्ययऽऽगमौ।
कश्चाऽहं का च मे शक्तिरिति चिन्त्यं मुहुर्मुहुः॥

बुद्धिमान व्यक्ति को बार-बार यह सोचना चाहिए कि हमारे मित्र कितने हैं, हमारा समय कैसा है—अच्छा है या बुरा और यदि बुरा है तो उसे अच्छा कैसे बनाया जाए। हमारा निवास-स्थान कैसा है (सुखद, अनुकूल), हमारी आय कितनी है और व्यय कितना है, मैं कौन हूं—आत्मा हूं, अथवा शरीर, स्वाधीन हूं अथवा पराधीन तथा मेरी शक्ति कितनी है।। 18।।

इन प्रश्नों पर विचार करते हुए मनुष्य को अपना जीवन बिताना चाहिए तथा आत्मकल्याण के लिए सदा प्रयत्नशील रहना चाहिए। जो व्यक्ति इन बातों पर विचार नहीं करता, वह पत्थर के समान निर्जीव होता है और सदा लोगों के पांवों में पड़ा ठोकरें खाता रहता है। मनुष्य को समझदारी से काम लेकर जीवन बिताना चाहिए।

जानिता चोपनेता च यस्तु विद्यां प्रयच्छति।
अन्नदाता भयत्राता पंचैवे पितरः स्मृता।।

जन्म देने वाला पिता, उपनयन-संस्कार कराने वाला, विद्या देने वाला गुरु, अन्नदाता और भय से रक्षा करने वाला——ये पांच 'पितर' माने जाते हैं।।19।।

आचार्य चाणक्य ने प्रस्तुत श्लोक में पंच पितर के साथ एक पितर को रक्षा करने वाला भी कहा है। रक्षा जीवित ही कर सकता है, मरा हुआ नहीं। मरा अपनी ही रक्षा नहीं कर सकता तो दूसरों की क्या करेगा। गीता में भी कौरव-पांडवों की सेना के आमने-सामने खड़े हो जाने के समय के वर्णन में 'पितर' शब्द आया है। अर्जुन ने वहां खड़े हुए पितरों—चाचा, ताऊ, पिता, दादा आदि को देखा था। पितर सिर्फ मरे हुए के लिए आता है, ऐसा सोचना भ्रामक है।

राजपत्नी गुरोः पत्नी मित्रपत्नी तथैव च।
पत्नी माता स्वमाता च पंचैता मातरः स्मृताः।।

राजा की पत्नी, गुरु की स्त्री, मित्र की पत्नी, पत्नी की माता (सास) और अपनी जननी—ये पांच माताएं मानी गई हैं। इनके साथ मातृवत् व्यवहार ही करना चाहिए।।20।।

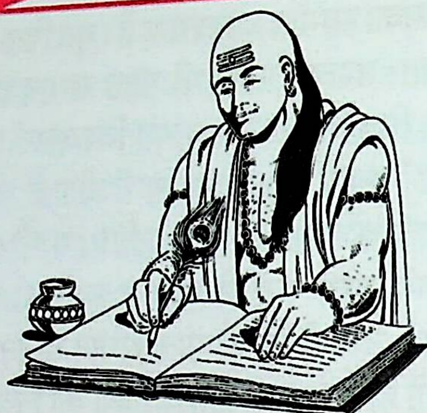
प्रस्तुत श्लोक में आचार्य चाणक्य ने पांच माताओं की प्रतिष्ठा स्थापित करते हुए कहा है—राजा चूंकि पूरे राज्य की जनता के लिए पिता तुल्य होता है, अतः राजा की पत्नी माता रूप

में होती है, उसका सम्मान आवश्यक है। गुरु पिता के समान होता है अतः उसकी पत्नी भी माता समान होती है, सम्मान की पात्र है। मित्र का महत्त्व अत्यंत विश्वसनीय पात्र के रूप में है। मित्र सुख-दुख में बराबर का साथी होता है, अतः मित्र की पत्नी को भी माता के समान मानना चाहिए। पत्नी की माता, अर्थात सास को भी माता रूप में मानना चाहिए। पत्नी जो जीवनसंगिनी बन गई, उसकी मां को माता समान मानना चाहिए। अपनी मां तो मां होती ही है। उसके प्रति कर्त्तव्यों का निर्वाह करना चाहिए।

अग्निर्देवो द्विजातीनां मुनीनां हृदि दैवतम्।
प्रतिमा स्वल्पबुद्धीनां सर्वत्र समदर्शिनः।।

अग्नि देव ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्यों के देवता हैं। ऋषि-मुनियों के देवता हृदय में हैं। अल्प बुद्धि वालों के देवता मूर्तियों में हैं और सारे संसार को समान रूप से देखने वालों के देवता सभी जगह निवास करते हैं।।21।।

जो तत्त्वज्ञानी हैं, जिन्होंने इस चराचर सृष्टि के रहस्य को जान लिया है, उनके लिए सम्पूर्ण ब्रह्मांड ही उस परम शक्तिसम्पन्न परमात्मा का घर है। वह कण-कण में व्याप्त है। सभी प्राणियों में है। जड़ में है, चेतन में है, परंतु दो बार जन्म लेने वाले, एक बार माता के गर्भ से और दूसरी बार गुरु के द्वारा संस्कारित होने पर, ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्व अग्नि अर्थात 'यज्ञ' को ही अपना देवता मानते हैं। ऋषि-मुनि परमात्मा के स्वरूप का ध्यान अपने हृदय में करते हैं और अल्प बुद्धि लोग पत्थरों की मूर्ति में ही भगवान का स्वरूप तलाशते हैं। यह अपनी-अपनी आस्था की बात है।



॥ अथ पंचम अध्याय ॥

गुरुरग्निर्द्विजातिनां वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः।
पतिरेव गुरुः स्त्रीणां सर्वस्याऽभ्यागतो गुरुः॥

स्त्रियों का गुरु पति है। अतिथि सबका गुरु है। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य का गुरु अग्नि है तथा चारों वर्णों का गुरु ब्राह्मण है॥1॥

यहां आचार्य चाणक्य ने ब्राह्मणों की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया है, परंतु जो ज्ञानी है, वही ब्राह्मण है। कोई जन्म से ही ब्राह्मण नहीं हो जाता। इस श्लोक में 'ब्राह्मण' से चाणक्य का तात्पर्य ज्ञान से परिपूर्ण व्यक्ति से है।

यथा चतुर्भिः कनकं परीक्ष्यते, निघर्षणच्छेदनतापताडनैः।
तथा चतुर्भिः पुरुषः परीक्ष्यते, त्यागेन, शीलेन, गुणेन, कर्मणा॥

जिस प्रकार घिसने, काटने, आग में तापने-पीटने, इन चार उपायों से सोने की परख की जाती है, वैसे ही त्याग, शील, गुण और कर्म, इन चारों से मनुष्य की पहचान होती है॥2॥

व्यक्तित्व की पहचान, आदमी के शील-स्वभाव, उसके कर्म, उसके गुण और उसकी त्याग-भावना के द्वारा होती है।

तावद् भयेषु भेतव्यं यावद् भयमनागतम्।
आगतं तु भयं दृष्टवा प्रहर्तव्यमशंकया।।

भय से तभी तक डरना चाहिए, जब तक भय आए नहीं। आए हुए भय को देखकर निशंक होकर प्रहार करना चाहिए, अर्थात उस भय की परवाह नहीं करनी चाहिए।।3।।

भयभीत व्यक्ति अपने सारे कार्य भय के वशीभूत होकर बिगाड़ लेता है, लेकिन जो व्यक्ति भय के उपस्थित होने पर उसका विरोध करता है, उसका कार्य कभी खराब नहीं होता।

एकोदरसमुद्भूताः एकनक्षत्रजातकाः।
न भवन्ति समाः शीले यथा बदरिकंटका।।

एक ही माता के पेट से और एक ही नक्षत्र में जन्म लेने वाली संतान समान गुण और शील वाली नहीं होती, जैसे बेर के कांटे।।4।।

सभी बच्चों का स्वभाव अलग-अलग होता है। भले ही वे जुड़वां पैदा हुए हों। बेर के पेड़ पर फल भी लगता है और कांटे भी। यह ईश्वर की विचित्र लीला है जिसे समझना सरल नहीं।

निःस्पृहो नाऽधिकारी स्यान्नाकामी मंडनप्रियः।
नाऽविदग्धः प्रियं ब्रूयात् स्पष्टवक्ता न वञ्चकः।।

जिसका जिस वस्तु से लगाव नहीं है, उस वस्तु का वह अधिकारी नहीं है। यदि कोई व्यक्ति सौंदर्य प्रेमी नहीं होगा तो शृंगार-शोभा के प्रति उसकी आसक्ति नहीं होगी। मूर्ख व्यक्ति प्रिय और मधुर वचन नहीं बोल पाता और स्पष्ट वक्ता कभी धोखेबाज, धूर्त या मक्कार नहीं होता।।5।।

जो व्यक्ति सहज है, जिसमें किसी के प्रति कोई लगाव या दुराव नहीं है, वह व्यक्ति व्यर्थ की साज-संवार से अपने को अलग

रखता है। जो चालाक और धूर्त होते हैं, वे ही मधुर वचन बोलते हैं, मूर्ख नहीं। साफ-साफ बोलने वाला कड़वा जरूर होता है, पर धोखेबाज नहीं होता।

मूर्खाणां पंडिता द्वेष्याः अधनानां महाधनाः।
वाराऽऽ ङ्गनाः कुलस्त्रीणां सुभगानां च दुर्भगाः॥

मूर्खों के पंडित, दरिद्रों के धनी, विधवाओं की सुहागिनें और वेश्याओं की कुल-धर्म रखने वाली पतिव्रता स्त्रियां शत्रु होती हैं॥6॥

यह सांसारिक नियम है कि मूर्ख व्यक्ति पंडितों से ईर्ष्या करते हैं, निर्धन व्यक्ति धनिकों से ईर्ष्या करते हैं। वेश्याएं या व्यभिचारिणी स्त्रियां पतिव्रत धर्म का पालन करने वाली कुल-वधुओं से ईर्ष्या करती हैं और विधवाएं सुहागिनों को देखकर अपने भाग्य को कोसती रहती हैं। यह एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। दूसरे को सुखी देखकर कोई सुखी नहीं होता।

आलस्योपहता विद्या परहस्तगतं स्त्रियः।
अल्पबीजं हतं क्षेत्रं हतं सैन्यमनायकम्॥

आलस्य से (अध्ययन न करना) विद्या नष्ट हो जाती है। दूसरे के पास गई स्त्री, बीज की कमी से खेती और सेनापति के न होने से सेना नष्ट हो जाती है॥7॥

युद्ध क्षेत्र में सेनानायक का अभाव सेना का मनोबल तोड़ देता है और वह शत्रु का सामना न करके भागने लगती है और हार जाती है।

इसी प्रकार यदि खेत में पर्याप्त बीज न डाला जाए तो खेती अथवा उपज ठीक से नहीं हो पाती। दूसरे के पास गई स्त्री के सकुशल लौटने की उम्मीद कम ही रहती है और यदि

अध्ययन की प्रक्रिया को निरंतर बनाए न रखा जाए तो जो विद्या अर्जित की जाती है, वह धीरे-धीरे स्मृति से मिटने लगती है। अतः विद्या, स्त्री, कृषि और सेना के प्रति सदैव सजग रहना चाहिए।

अभ्यासाद्धार्यते विद्या कुलं शीलेन धार्यते।
गुणेन शायते त्वार्यः कोपो नेत्रेण गम्यते॥

विद्या अभ्यास से आती है, सुशील स्वभाव से कुल का बड़प्पन होता है। श्रेष्ठत्व की पहचान गुणों से होती है और क्रोध का पता आंखों से लगता है॥8॥

इस प्रकार विद्या की रक्षा के लिए अभ्यास करते रहना जरूरी है। शील-स्वभाव से कुल को मान-सम्मान मिलता है, सद्गुणों से श्रेष्ठता का पता चलता है और क्रोध का पता आंखों से लग जाता है। भाव यह है कि मनुष्य यदि अपने भावों को छिपाना भी चाहे तो छिपा नहीं सकता। स्वभाव, गुण और चेहरे से मनुष्य का पूरा परिचय मिल जाता है।

वित्तेन रक्ष्यते धर्मो विद्या योगेन रक्ष्यते।
मृदुना रक्ष्येत भूपः सत्स्त्रिया रक्ष्येते गृहम्॥

धर्म की रक्षा धन से, विद्या की रक्षा निरंतर साधना से, राजा की रक्षा मृदु स्वभाव से और पतिव्रता स्त्रियों से घर की रक्षा होती है॥9॥

धर्मानुष्ठान (यज्ञ, धर्मशालाएं, तीर्थाटन, मंदिर निर्माण, पूजा आदि) के लिए धन अनिवार्य होता है। बिना अभ्यास के विद्या भी पास नहीं टिकती। राजा अपने मृदु स्वभाव से ही प्रजा को अपने अनुकूल करता है और कुलीन स्त्रियों से ही घर-गृहस्थी की मर्यादा बनी रहती है। अतः इसका ध्यान रखना बहुत जरूरीं है।

अन्यथा वेदपाण्डित्यं शास्त्रमाचारमन्यथा।
अन्यथा कुवचःशान्तं लोकाः क्लिश्यन्ति चान्यथा।।

वेद पांडित्य व्यर्थ है, शास्त्रों का ज्ञान व्यर्थ है, ऐसा कहने वाले स्वयं ही व्यर्थ हैं। उनकी ईर्ष्या और दुःख भी व्यर्थ हैं। वे व्यर्थ में ही दुःखी होते हैं, जबकि वेदों और शास्त्रों का ज्ञान व्यर्थ नहीं है।।10।।

मूर्खता के वशीभूत होकर ही लोग आप्त ज्ञान को व्यर्थ बताते हैं, जबकि ज्ञान कोई भी व्यर्थ नहीं होता। ऐसा वे ही लोग कहते हैं जो वेदों में छिपे ज्ञान के मर्म को समझ नहीं पाते। जिन्हें शास्त्रों का ,विश्लेषण करना नहीं आता।

दारिद्र्यनाशनं दानं शीलं दुर्गतिनाशनम्।
अज्ञाननाशिनी प्रज्ञा भावना भयनाशिनी।।

दरिद्रता का नाश दान से, दुर्गति का नाश शालीनता से, मूर्खता का नाश सद्बुद्धि से और भय का नाश अच्छी भावना से होता है।।11।।

जो व्यक्ति दरिद्र रहते हुए भी सामर्थ्य के अनुसार दान देकर दूसरों के कष्टों का निवारण करता है, उसका दान समृद्ध व्यक्ति के दान से श्रेष्ठ होता है। शालीनता के साथ संकट काल को सहन करने वाला व्यक्ति अपने संकटों पर विजय प्राप्त करता है तथा सुशीलता कष्ट को दूर करती है। इसी प्रकार ज्ञानी व्यक्ति अज्ञान का नाश करता है।

नास्ति कामसमो व्याधिर्नास्ति मोहसमो रिपुः।
नाऽस्ति कोपसमो वह्निर्नाऽस्ति ज्ञानात् परं सुखम्।।

काम-वासना के समान दूसरा रोग नहीं, मोह के समान शत्रु नहीं, क्रोध के समान आग नहीं और ज्ञान से बढ़कर सुख नहीं।।12।।

काम–वासना में लिप्त व्यक्ति धीरे–धीरे व्यभिचारी हो जाता है। काम–वासना एक भयानक रोग की भांति उसे जकड़ लेती है। मोह में पड़ा व्यक्ति अंधा हो जाता है। उसे भला–बुरा कुछ दिखाई नहीं देता। क्रोधी व्यक्ति क्रोध रूपी अग्नि में स्वयं तो जलता ही है, दूसरों को भी जलाता है। इस संसार में यदि कहीं सुख और आनंद है तो ज्ञानी बनने में है।

जन्ममृत्यु हि यात्येको भुनक्त्येकः शुभाऽशुभम्।
नरकेषु पतत्येक एको याति परां गतिम्॥

मनुष्य अकेला ही जन्म लेता है और अकेला ही मरता है। वह अकेला ही अपने अच्छे–बुरे कर्मों को भोगता है। वह अकेला ही नर्क में जाता है और परम पद को पाता है॥13॥

जीवन और मृत्यु, कर्मों का भोग, नरक वास और परम शक्ति का सान्निध्य मनुष्य अकेला ही प्राप्त करता है। कोई उसके साथ न तो आता है, न जाता है। कोई उसका सहायक नहीं होता। सब भाई–बंधु यहीं रह जाते हैं। वह अकेला आता है और अकेला ही जाता है। जीवन का यही चक्र है, जो शाश्वत है, सनातन है।

तृणं ब्रह्मविदः स्वर्गस्तृणं शूरस्य जीवितम्।
जिताऽक्षस्य तृणं नारी निःस्पृहस्य तृणं जगत्॥

ब्रह्मज्ञानियों की दृष्टि में स्वर्ग तिनके के समान है, शूरवीर की दृष्टि में जीवन तिनके के समान है, इन्द्रजीत के लिए स्त्री तिनके के समान है और जिसे किसी भी वस्तु की कामना नहीं है, उसकी दृष्टि में यह सारा संसार तिनके के समान है। उसे सारा संसार क्षणभंगुर दिखाई देता है। वह तत्त्वज्ञानी हो जाता है॥14॥

प्रस्तुत श्लोक के माध्यम से आचार्य चाणक्य ने शिक्षा दी है कि मनुष्य को ज्ञान का अर्जन करना चाहिए और यह

ज्ञान इस हद तक सीखना चाहिए कि वह ब्रह्मज्ञानी बन जाए।

यदि मनुष्य शूरवीर है तो उसे जीवन का मोह नहीं होता, क्योंकि उसका जन्म ही वीरता दिखाते हुए प्रोणोत्सर्ग कर देने के लिए हुआ है।

इंद्रियों को वश में रखने वाले के लिए स्त्री का कोई महत्त्व नहीं, वह तो उसके लिए तृण के समान है। इसी तरह जिसे लोभ नहीं उसके लिए संसार का कोई मोह नहीं हो सकता।

विद्या मित्रं प्रवासेषु भार्या मित्रं गृहेषु च।
व्याधितस्यौषधं मित्रं धर्मो मित्रं मृतस्य च।।

प्रवास (विदेश) में विद्या ही मित्र होती है, घर में पत्नी मित्र होती है, रोगियों के लिए औषधि मित्र है और मरते हुए व्यक्ति का मित्र धर्म होता है अर्थात उसके सत्कर्म होते हैं, इसीलिए विद्या, पतिव्रता विदुषी स्त्री, रोग के समय उचित औषधि और मृत्यु काल निकट आने पर व्यक्ति के सत्कर्म ही उसका साथ देते हैं।।15।।

आचार्य चाणक्य के उपरोक्त श्लोक के संदर्भ में विद्या के लिए कहा गया है कि विद्या कामधेनु के समान गुणों से युक्त है। यह असमय फल देने वाली है। यह प्रवास में माता के समान हितकारिणी और रक्षिका है। विद्या को गुप्त धन माना गया है।

पत्नी पुरुष का आधा अंग है। पत्नी पति की सर्वश्रेष्ठ मित्र होती है। पत्नी धर्म, अर्थ और काम का मूल होती है। यहां तक कि भवसागर पार उतरने की इच्छा वाले पुरुष की सहयोगी होती है। रोगी के लिए औषध और मृत्यु के बाद उसके अच्छे कर्म मनुष्य के साथी होते हैं।

वृथा वृष्टिः समुद्रेषु वृथा तृप्तेषु भोजनम्।
वृथा दानं धनाढ्येषु वृथा दीपो दिवाऽपि च।।

समुद्र में वर्षा का होना व्यर्थ है, तृप्त व्यक्ति को भोजन कराना व्यर्थ है, धनिक को दान देना व्यर्थ है और दिन में दीपक जलाना व्यर्थ है।।16।।

वर्षा की जरूरत सूखे मैदानों और कृषि के लिए खेतों में अधिक होती है, भोजन की जरूरत भूखे व्यक्ति के लिए होती है। दान की जरूरत निर्धन के लिए होती है और दीपक की जरूरत रात्रि का अंधकार दूर करने के लिए होती है।

नोट—समुद्र में वर्षा, तृप्त व्यक्ति को भोजन खिलाना, धनवान को दान देना और दिन के प्रकाश में दीपक जलाना, ये सभी कार्य निरर्थक हैं, व्यर्थ हैं।

नाऽस्ति मेघसमं तोयं नाऽस्ति चात्मसमं बलम्।
नाऽस्ति चक्षुःसमं तेजो नाऽस्ति धान्यसमं प्रियम्।।

बादल के जल के समान दूसरा जल नहीं है, आत्मबल के समान दूसरा बल नहीं है, अपनी आंखों के समान दूसरा प्रकाश नहीं है और अन्न के समान दूसरा प्रिय पदार्थ नहीं है।।17।।

बादलों का जल सर्वाधिक स्वच्छ और स्वास्थ्यवर्धक होता है।

आदमी का आत्म बल सभी शक्तियों से ऊपर होता है। आत्मबल हो तो मनुष्य कठिन-से-कठिन संकट व परिस्थितियों का भी हंसते-हंसते सामना कर लेता है तथा सफलता को प्राप्त करता है। जिन नेत्रों में ज्योति है, वे ही बाहरी प्रकाश और सौंदर्य का पान कर सकते हैं और बिना अन्न के जीवन की सुरक्षा असंभव है।

अधना धनमिच्छन्ति वाचं चैव चतुष्पदाः।
मानवाः स्वर्गमिच्छन्ति मोक्षमिच्छन्ति देवताः।।

निर्धन धन चाहते हैं, पशु वाणी चाहते हैं। मनुष्य स्वर्ग की इच्छा करते हैं और देवगण मोक्ष चाहते हैं।।18।।

संसार में सभी प्राणी किसी-न-किसी अभाव से ग्रस्त रहते हैं। इस अभाव को मिटाने के लिए वे प्रयत्न करते हैं।

प्राय: जिस प्राणी के पास जिस वस्तु का अभाव होता है, वह उसी को पाना चाहता है।

सत्येन धार्यते पृथिवी सत्येन तपते रविः।
सत्येन वाति वायुश्च सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम्।।

सत्य पर पृथ्वी टिकी है, सत्य से सूर्य तपता है, सत्य से वायु बहती है, संसार के सभी पदार्थ सत्य में निहित हैं।।19।।

यहां सत्य की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए आचार्य चाणक्य कहते हैं कि यह समस्त पृथ्वी, हवा की गति, सूर्य की तपिश और संपूर्ण ब्रह्मांड सत्य में ही समाया हुआ है। सत्य के द्वारा ही सारा ब्रह्मांड चलाया जाता है और कहा भी गया है 'सत्यं शिवं सुन्दरम्।' अर्थात सत्य ही सबसे बड़ा धर्म है, सत्य से बढ़कर कुछ भी नहीं है।

चला लक्ष्मीश्चलाः प्राणाश्चलं जीवित-यौवनं।
चलाचले च संसारे धर्म एको हि निश्चलः।।

लक्ष्मी अनित्य और अस्थिर है, प्राण भी अनित्य है और जीवन भी अनित्य है। इस चलते-फिरते संसार में केवल धर्म ही स्थिर है।।20।।

इस संसार में केवल धर्म ही ऐसा है जो स्थिर रूप से मानव हृदय में रहता है। इसके अलावा समृद्धि (धन-सम्पत्ति),

जीवन और सभी चराचर पदार्थ समय आने पर नष्ट हो जाने वाले हैं, लेकिन धर्म अजर-अमर है। मनुष्य का सभी करा-धरा यहीं रह जाएगा, केवल धर्म ही उसके साथ जाएगा।

अतः धर्म का संग्रह करना ही श्रेष्ठ है।

नराणां नापितो धूर्तः पक्षिणां चैव वायसः।
चतुष्पदां शृगालस्तु स्त्रीणां धूर्ता च मालिनी॥

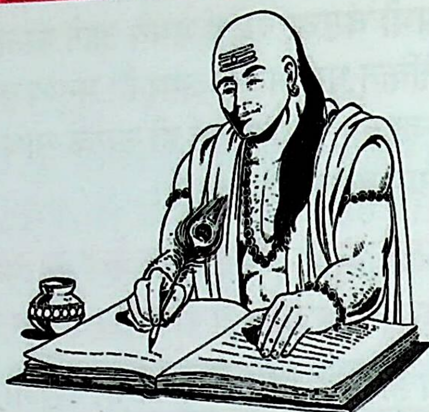
पुरुषों में नाई धूर्त होता है, पक्षियों में कौवा, पशुओं में गीदड़ और स्त्रियों में मालिन धूर्त होती है।।21।।

ये चारों सदैव दूसरों के कार्य को बिगाड़ने वाले होते हैं।

जनिता चोपनेता च यस्तु विद्यां प्रयच्छति।
अन्नदाता भयत्राता पञ्चैते पितरः स्मृताः॥

मनुष्य को जन्म देने वाला, यज्ञोपवीत संस्कार कराने वाला पुरोहित, विद्या देने वाला आचार्य, अन्न देने वाला, भय से मुक्ति दिलाने वाला अथवा रक्षा करने वाला, ये पांच पिता कहे गए हैं।।22।।

पिता जीवन देता है, पुरोहित समाज में प्रतिष्ठित करने के लिए यज्ञोपवीत संस्कार कराता है, आचार्य ज्ञान देकर जीवन और जगत के समस्त कार्य-व्यापार से परिचित कराता है, अन्न उत्पन्न करने वाला कृषक हमारे लिए भोजन की व्यवस्था करता है और राजा हमारी शत्रु से रक्षा करके हमें भयमुक्त करता है। अतः समाज ने इन्हें पिता अर्थात—पालन करने वाले का उच्च स्थान दिया है।



॥ अथ षष्ठम अध्याय ॥

श्रुत्वा धर्मं विजानाति श्रुत्वा त्यजति दुर्मतिम्।
श्रुत्वा ज्ञानमवाप्नोति श्रुत्वा मोक्षमवाप्नुयात्॥

मनुष्य शास्त्रों को पढ़कर धर्म को जानता है और मूर्खता को त्यागकर ज्ञान प्राप्त करता है तथा शास्त्रों को सुनकर मोक्ष प्राप्त करता है॥1॥

धर्मोपदेशक के प्रवचन सुनकर ही बहुत–से भक्तजन अपना जीवन संवार लेते हैं। गुरु भी जब शिक्षा देता है, तब वह अपने शिष्यों को बोलकर ही विद्यादान देता है और शिष्य श्रवण करके ही ज्ञान प्राप्त करते हैं।

पक्षिणां काकश्चाण्डालः पशूनां चैव कुक्कुरः।
मुनीनां कोपीचाण्डालः सर्वेषां चैव निन्दकः॥

पक्षियों में कौआ, पशुओं में कुत्ता, ऋषि–मुनियों में क्रोध करने वाला और मनुष्यों में चुगली करने वाला चांडाल अर्थात नीच होता है॥2॥

पापकर्म व चुगली करना मानव–जीवन के दोष माने गए हैं। इन्हें करने वाला मनुष्य ऋषि–मुनि होने पर भी चांडाल होता है, जैसे

पक्षियों में कौए और पशुओं में कुत्ते को नीच माना गया है।

भस्मना शुद्ध्यते कांस्यं ताम्रमम्लेन शुद्ध्यते।
रजसा शुद्ध्यते नारी नदी वेगेन शुद्ध्यति॥

कांसे का पात्र राख द्वारा मांजने से शुद्ध होता है, तांबे का पात्र खटाई के रगड़ने से शुद्ध होता है। स्त्री रजस्वला होने से पवित्र होती है और नदी तीव्र गति से बहने से निर्मल हो जाती है॥3॥

हर वस्तु और प्राणी की अपनी-अपनी प्रवृत्ति है। नदी का पानी यदि रुक जाए तो वह नदी नहीं रहती। उसका रुका हुआ पानी गंदा हो जाता है। पानी जब वेग से बहता है, तभी वह शुद्ध होता है। इसी प्रकार रजस्वला होने के बाद ही स्त्री गर्भ धारण करने योग्य बनती है और तांबे के बर्तन को अम्ल (खटाई) से और कांसे के बर्तन को राख से मांजकर शुद्ध किया जा सकता है।

किसी मनुष्य की गंदी आदतों को शुद्ध करने के लिए इसी भांति साम, दाम, दंड, भेद की नीति अपनानी चाहिए, ऐसा आचार्य चाणक्य का मत है।

भ्रमन् सम्पूज्यते राजा भ्रमन् सम्पूज्यते द्विजः।
भ्रमन् सम्पूज्यते योगी भ्रमन्ती स्त्री भ्रमन्ती विनश्यति॥

प्रजा की रक्षा के लिए भ्रमण करने वाला राजा सम्मानित होता है, भ्रमण करने वाला योगी और ब्राह्मण सम्मानित होता है, किन्तु इधर-उधर घूमने वाली स्त्री भ्रष्ट होकर नष्ट हो जाती है॥4॥

जो राजा प्रजा के सुख-दुख में सम्मिलित होकर उनकी परेशानियों को दूर करता है, प्रजा उस राजा का सदैव आदर करती है। इसी प्रकार जो योगी और ब्राह्मण प्रजा के हित में भ्रमण करते रहते हैं और उनके सभी धार्मिक, सामाजिक आर्थिक कार्यों में उनकी मंगलकामना करते हैं, लोग

उनका सम्मान करते हैं, उन्हें पूज्य मानते हैं परंतु इधर-उधर भटकने वाली स्त्री पतित होकर नष्ट हो जाती है।

यस्याऽर्थास्तस्य मित्राणि यस्याऽर्थास्तस्य बांधवाः।
यस्याऽर्थाः स पुमांल्लोके यस्याऽर्थाः स च पण्डितः॥

जिसके पास धन है उसके अनेक मित्र होते हैं, उसी के अनेक बंधु-बांधव होते हैं, वही पुरुष कहलाता है और वही पंडित कहलाता है॥5॥

धन का महत्त्व इतना बड़ा है कि जिसके पास यह होता है, सब उसे ही महापुरुष, पंडित (विद्वान) और सबका हितैषी मानने लगते हैं। सब उससे मित्रता करना चाहते हैं और उससे संबंध बनाना चाहते हैं। उसके सभी दोष, अवगुण और व्यसन पैसे की चकाचौंध के सामने छिप जाते हैं।

तादृशी जायते बुद्धिर्व्यवसायोऽपि तादृशः।
सहायास्तादृशा एव यादृशी भवितव्यता॥

जैसी होनहार होती है, वैसी ही बुद्धि हो जाती है, उद्योग-धंधा भी वैसा ही हो जाता है और सहायक भी वैसे ही मिल जाते हैं॥6॥

'होनी बलवान है' यह मुहावरा काफी प्रचलित है। आदमी के भाग्य में जो लिखा है, वह होकर ही रहता है। उसी के अनुसार सारे बानक बनते चले जाते हैं। आदमी कुछ नहीं करता, उसका भाग्य ही सब कुछ करता है।

कालः पचति भूतानि कालः संहरते प्रजाः।
कालः सुप्तेषु जागर्ति कालो हि दुरतिक्रमः॥

काल (समय, मृत्यु) ही पंच भूतों (पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश) को पचाता है और सब प्राणियों

का संहार भी काल ही करता है। संसार में प्रलय हो जाने पर वह सुप्तावस्था अर्थात स्वप्नवत रहता है। काल की सीमा को निश्चय ही कोई भी लांघ नहीं सकता।।7।।

काल की गति को कोई रोक नहीं सकता। समय चक्र में आकर सभी को एक-न-एक दिन नष्ट होना पड़ता है।

काल की गति जीवन से मृत्यु तक शाश्वत है, सनातन है। इससे बचना असंभव है। यह किसी को नहीं छोड़ता।

न पश्यति च जन्मान्धः कामान्धो नैव पश्यति।
न पश्यति मदोन्मत्तोः ह्यर्थी दोषान् न पश्यति।।

जन्म से अंधे को कुछ दिखाई नहीं देता, काम में आसक्त व्यक्ति को भला-बुरा कुछ सुझाई नहीं देता, मद से मतवाला बना प्राणी कुछ सोच नहीं पाता और अपनी जरूरत को सिद्ध करने वाला दोष नहीं देखा करता।।8।।

धन और शक्ति के अहंकार से भरा व्यक्ति अपना विवेक खो बैठता है। उसे केवल अपना स्वार्थ ही सर्वोपरि दिखाई देता है। उसकी दशा उस अंधे के समान होती है, जो जन्म से अंधा होता है।

स्वयं कर्म करोत्यात्मा स्वयं तत्फलमश्नुते।
स्वयं भ्रमति संसारे स्वयं तस्माद् द्विमुच्यते।।

जीव स्वयं ही (नाना प्रकार के अच्छे-बुरे) कर्म करता है, उसका फल भी स्वयं ही भोगता है। वह स्वयं ही संसार की मोह-माया में फंसता है और स्वयं ही इसे त्यागता है।।9।।

वस्तुतः मनुष्य के हाथों में कुछ नहीं है। ईश्वर की प्रेरणा से वह संसार में रहते हुए नाना प्रकार के कर्मों में फंसता है

और जब उन कर्मों का अच्छा-बुरा फल उसे भुगतना पड़ता है, तब वह संसार की मोह-माया से मुक्त होने के लिए छटपटाता है और परमात्मा को याद करके इस जंजाल से निकलना चाहता है।

राजा राष्ट्रकृतं पापं राज्ञः पापं पुरोहितः।
भर्ता च स्त्रीकृतं पापं शिष्यपापं गुरुस्तथा।।

राजा अपनी प्रजा के द्वारा किए गए पाप को, पुरोहित राजा के पाप को, पति अपनी पत्नी के द्वारा किए गए पाप को और गुरु अपने शिष्य के पाप को भोगता है।। 10।।

राजा का कर्त्तव्य है कि वह अपनी प्रजा को पाप कर्म की ओर न बढ़ने दे, पुरोहित अथवा मंत्री का कर्त्तव्य है कि वह राजा को पाप की ओर प्रवृत्त न होने दे और इसी तरह पति का कर्त्तव्य है कि वह अपनी पत्नी को गलत राह पर न जाने दे तथा गुरु का कर्त्तव्य है कि वह अपने शिष्य को पाप कर्म न करने दे। यदि वे ऐसा नहीं करते तो राजा को प्रजा का, पुरोहित को राजा का, पति को पत्नी का और गुरु को अपने शिष्य का पाप स्वयं भुगतना पड़ता है।

ऋणकर्ता पिता शत्रुः माता च व्यभिचारिणी।
भार्या रूपवती शत्रुः पुत्रः शत्रुरपण्डितः।।

कर्जदार पिता शत्रु है, व्यभिचारिणी माता शत्रु है, मूर्ख लड़का शत्रु है और सुंदर स्त्री शत्रु है।। 11।।

जो पिता अपनी संतान पर अपना कर्ज छोड़कर जाता है, वह शत्रु के समान है, जो माता पतन के मार्ग पर चल रही है, वह संतान के लिए शत्रु है, जो स्त्री सुंदर है, उसकी रक्षा में पति को बहुत कठिनाई झेलनी पड़ती है क्योंकि सभी की कुदृष्टि उस पर रहती है और यदि संतान ही मूर्ख है तो वह माता-पिता के लिए शत्रु से कम नहीं होती।

लुब्धमर्थेन गृह्णीयात् स्तब्धमञ्जलिकर्मणा।
मूर्खं छन्दोनुवृत्तेन यथार्थत्वेन पण्डितम्।।

लोभी को धन से, घमंडी को हाथ जोड़कर, मूर्ख को उसके अनुसार व्यवहार से और पंडित को सच्चाई से वश में करना चाहिए।। 12।।

लोभी व्यक्ति धन का लालची होता है। अहंकारी व्यक्ति अपने अहंकार की संतुष्टि चाहता है। उसे नम्रता से वश में करना चाहिए। मूर्ख व्यक्ति की इच्छानुसार कार्य करके, उसे बहला-फुसलाकर वश में करना चाहिए और विद्वान व्यक्ति के सम्मुख कभी झूठ नहीं बोलना चाहिए। उसे सच्चाई से ही वश में करना चाहिए।

वरं न राज्यं न कुराज्यराज्यं, वरं न मित्रं न कुमित्रमित्रम्।
वरं न शिष्यो न कुशिष्योशिष्यो, वरं न दारा न कुदारदाराः।।

बिना राज्य के रहना उत्तम है, परंतु दुष्ट राजा के राज्य में रहना अच्छा नहीं है। बिना मित्र के रहना अच्छा है, किंतु दुष्ट मित्र के साथ रहना उचित नहीं है। बिना शिष्य के रहना ठीक है, परंतु नीच शिष्य को ग्रहण करना ठीक नहीं है। बिना स्त्री के रहना उचित है, किंतु दुष्ट और कुल्टा स्त्री के साथ रहना उचित नहीं है।। 13।।

चाणक्य का कहना है कि ऐसे राज्य में निवास करना चाहिए जहां का राजा न्यायप्रिय और संवेदनशील हो, जहां सहृदय मित्रों का वास हो, जहां शिक्षा का समुचित प्रबंध हो और जहां की नारियां स्नेहयुक्त व्यवहार में पारंगत हो।

कुराजराज्येन कुतः प्रजासुखं, कुमित्रमित्रेण कुतो निवृत्तिः।
कुदारदारैश्च कुतो गृहे रतिः, कुशिष्यमध्यापयतः कुतो यशः।।

दुष्ट राजा के राज्य में प्रजा को सुख कहां? दुष्ट मित्र से

शान्ति कहां? दुष्ट स्त्रियों से घर में सुख कहां? दुष्ट विद्यार्थियों को पढ़ाने से यश कहां? अर्थात् ये सभी दुःख देने वाले हैं। इनसे सदैव अपना बचाव करना चाहिए।। 14।।

प्रस्तुत श्लोक में चाणक्य ने इससे पूर्व के श्लोक जैसी बात कही है। इस श्लोक में उन्होंने राजा, मित्र, स्त्री और शिष्य की परिभाषा को और भी स्पष्ट कर दिया है। उन्होंने बताया है कि दुष्ट राजा के राज्य में नहीं रहना चाहिए क्योंकि उसके राज्य में प्रजा को सुख प्राप्त नहीं हो सकते। अपने दुष्ट आचरण से वह प्रजा के सामने कोई-न-कोई विपत्तियां ही खड़ा करता रहेगा।

इसी तरह दुष्ट मित्र के साथ की गई मित्रता कभी किसी का कल्याण नहीं कर सकती, दुराचारिणी स्त्री को पत्नी बनाने से गृहस्थ का आनंद जाता रहता है। दुष्ट व्यक्ति को विद्या दान देकर यश की आशा करना व्यर्थ है।

सिंहादेकं बकादेकं शिक्षेच्चत्वारि कुक्कुटात्।
वायसात्पंच शिक्षेच्च षट्-शुनस्त्रीणि गर्दभात्।।

सिंह (शेर) और बगुले से एक-एक, गधे से तीन, मुर्गे से चार, कौए से पांच और कुत्ते से छः गुण (मनुष्य को) सीखने चाहिए।। 15।।

इस श्लोक का मूल भाव यह है कि मनुष्य को जो अच्छी बात, जो सद्गुण जहां से भी मिलें, वे ग्रहण कर लेने चाहिए। इनका उल्लेख आगे के पांच श्लोकों में किया गया है।

प्रभूतं कार्यमल्पं वा यन्नरः कर्तुमिच्छति।
सर्वारम्भेण तत्कार्यं सिंहादेकं प्रचक्षते।।

काम छोटा हो या बड़ा, उसे एक बार हाथ में लेने के बाद छोड़ना नहीं चाहिए। उसे पूरी लगन और सामर्थ्य के साथ करना चाहिए। जैसे सिंह पकड़े हुए शिकार को कदापि नहीं

छोड़ता। सिंह का यह एक गुण अवश्य लेना चाहिए।।16।।

आचार्य चाणक्य ने उपरोक्त श्लोक के माध्यम से कहा है कि मनुष्य को चाहिए कि वह जो भी कार्य करे उसे पूरी शक्ति और लगन लगाकर करे। पूरा साहस और सामर्थ्य लगा दे। कार्य करते समय इस बात को न देखे कि कार्य बहुत छोटा है, उसे तो बस यूं ही कर लेंगे। यह अवस्था आलस्य की होती है। सिंह को हमला चाहे हाथी पर करना हो या फिर किसी मृग पर वह एक-सी आक्रामक मुद्रा अपनाकर, एक-से साहस और वीरता के साथ हमला करता है। यद्यपि हाथी और मृग पर हमलावर के उद्देश्य अलग-अलग होते हैं। हाथी को बलशाली शत्रु मानकर उसे चोट पहुंचाने के लिए हमला करता है, पर मृग को अपना शिकार समझकर आक्रमण करता है, दोनों में वह एकरसता रखता है।

इन्द्रियाणि च संयम्य बकवत् पण्डितो नरः।
देशकालबलं ज्ञात्वा सर्वकार्याणि साधयेत्॥

सफल व्यक्ति वही है जो बगुले के समान अपनी सम्पूर्ण इन्द्रियों को संयम में रखकर अपना शिकार करता है। उसी के अनुसार देश, काल और अपनी सामर्थ्य को अच्छी प्रकार से समझकर अपने सभी कार्यों को करना चाहिए। बगुले से यह एक गुण ग्रहण करना चाहिए, अर्थात एकाग्रता के साथ अपना कार्य करें तो सफलता अवश्य प्राप्त होगी, अर्थात कार्य को करते वक्त अपना सारा ध्यान उसी कार्य की ओर लगाना चाहिए, तभी सफलता मिलेगी।। 17।।

आचार्य चाणक्य ने उपरोक्त श्लोक के माध्यम से बताया है कि कार्यसिद्धि करने के लिए जहां एकाग्रचित्तता और

संयम की आवश्यकता है, वही उसे इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि समय पर परिस्थितियां उस कार्यसिद्धि के लिए अनुकूल हैं अथवा नहीं। फल प्राप्ति की आशा में ध्यान लगाने से पहले देख लेना चाहिए कि वहां फल की संभावना है भी अथवा नहीं। बगुला वहीं ध्यान लगाकर बैठता है जहां मछली मिलने की आशा होती है, अन्यथा उड़कर दूसरी जगह चला जाता है।

सुश्रान्तोऽपि वहेद् भारं शीतोष्णं च न पश्यति।
सन्तुष्टश्चरते नित्यं त्रीणि शिक्षेच्च गर्दभात्॥

अत्यंत थक जाने पर भी बोझ को ढोना, ठंडे–गर्म का विचार न करना, सदा संतोषपूर्वक विचरण करना, ये तीन बातें गधे से सीखनी चाहिए।।18।।

बुद्धिमान व्यक्ति को कभी भी अपने कर्त्तव्य से विमुख नहीं होना चाहिए। उसे अपने कार्य को बोझ नहीं समझना चाहिए। ऋतुओं के प्रभाव को भी अनदेखा कर देना चाहिए और संतोष के साथ अपने कार्य को करते रहना चाहिए। ये तीन गुण गधे में पाए जाते हैं।

प्रत्युत्थानं च युद्धं च संविभागं च बन्धुषु।
स्वयमाक्रम्य भुक्तं च शिक्षेच्चत्वारि कुक्कुटात्॥

ब्रह्ममुहूर्त में जागना, रण में पीछे न हटना, बंधुओं में किसी वस्तु का बराबर भाग करना और स्वयं चढ़ाई करके किसी से अपने भक्ष्य को छीन लेना, ये चारों बातें मुर्गे से सीखनी चाहिए। मुर्गे में ये चारों गुण होते हैं। वह सुबह उठकर बांग देता है। दूसरे मुर्गे से लड़ते हुए पीछे नहीं हटता, वह अपने खाद्य को अपने चूजों के साथ बांटकर खाता है और अपनी मुर्गी को समागम में संतुष्ट रखता है।।19।।

आचार्य चाणक्य के उपरोक्त श्लोक में ठीक समय अर्थात प्रातःकाल जागने का गुण सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। अथर्ववेद में कहा गया है, जैसे उदय होता हुआ सूर्य सोते हुए आलसियों के तेज को हर लेता है उसी प्रकार एक वीर शत्रुओं के तेज और बल को खींच लेता है। सूर्योदय के पश्चात सोने वाले आलसी और निकम्मे हो जाते हैं, उनकी श्री नष्ट हो जाती है अतः सूर्योदय से पूर्व उठना चाहिए, यह मुर्गे का मुख्य गुण है। बंधुओं को उनका भाग देना चाहिए, शत्रु पर आक्रमण के लिए तैयार रहना चाहिए तथा खाने के मामले में भी आलस्य न करना चाहिए ताकि बल बना रहे।

गूढ़ च मैथुन धार्ष्ट्यं काले काले च संग्रहम्।
अप्रमत्तमविश्वासं पंच शिक्षेच्च वायसात्।।

मैथुन (स्त्री संभोग) गुप्त स्थान में करना चाहिए, छिपकर चलना चाहिए, समय-समय पर सभी इच्छित वस्तुओं का संग्रह करना चाहिए, सभी कार्यों में सावधानी रखनी चाहिए और किसी का जल्दी विश्वास नहीं करना चाहिए। ये पांच बातें कौवे से सीखनी चाहिए।।20।।

कौआ सदैव एकान्त में ही रति-क्रिया करता है, चालाकी से वह भोजन एकत्र करता रहता है, वह न तो कभी आलस्य और न किसी का विश्वास करता है।

बह्वाशी स्वल्पसन्तुष्टः सुनिद्रो लघुचेतनः।
स्वामिभक्तश्च शूरश्च षडेते श्वानतो गुनाः।।

बहुत भोजन करने की शक्ति रखने पर भी थोड़े भोजन से ही संतुष्ट हो जाए, अच्छी नींद सोए, परंतु जरा-से खटके पर ही जाग जाए, अपने रक्षक से प्रेम करे और शूरता दिखाए, इन छः गुणों को कुत्ते से सीखना चाहिए।।21।।

मनुष्य सामर्थ्य तो ज्यादा पाने की रखे, किंतु जो मिल जाए उसी पर संतोष कर लेना चाहिए। अच्छी नींद लेनी चाहिए, परंतु सतर्क और चौकन्ना भी रहना चाहिए। अपने मालिक के प्रति स्वामिभक्ति रखनी चाहिए और समय आने पर शूरवीरता दिखाने में पीछे नहीं हटना चाहिए। ये छः गुण कुत्ते में मिल जाते हैं।

इसी अध्याय के दूसरे श्लोक में आचार्य चाणक्य ने कुत्ते को नीच जानवर भी कहा है। उन्होंने ऐसा क्यों कहा यह स्पष्ट नहीं है।

य एतान् विंशतिगुणानाचरिष्यति मानवः।
कार्याऽवस्थासु सर्वासु अजेयः स भविष्यति।।

जो मनुष्य उपरोक्त बीस गुणों को अपने जीवन में उतारकर आचरण करेगा, वह सदैव सभी कार्यों में विजय प्राप्त करेगा।।22।।

इस प्रकार, कोई भी कार्य छोटा हो या बड़ा, उसे एक बार हाथ में लेने पर इन्द्रियों को पूर्ण नियन्त्रण में रखते हुए पूरा करना चाहिए। यह शिक्षा हमें सिंह और बगुले से मिलती है। हमें किसी भी कार्य को बोझ नहीं समझना चाहिए, सर्दी-गर्मी और वातावरण के विपरीत प्रभाव से नहीं घबराना चाहिए तथा सदैव संतोष रखना चाहिए। ये तीन बातें हमें गधे से सीखनी चाहिए।

प्रातःकाल जल्दी उठना, प्रतिद्वन्द्वी से संघर्ष करने के लिए सदैव तत्पर रहना, पास की खाद्य वस्तु को परस्पर बांटकर खाना और रति-क्रिया में अपनी स्त्री को संतुष्ट करना, ये चार बातें मुर्गे से सीखनी चाहिए।

एकान्त में मैथुन करना, चतुराई में सबसे आगे रहना,

आपातकाल के लिए खाद्य-सामग्री का संग्रह करना, न कभी आलस्य करना और न किसी पर विश्वास करना, ये पांच बातें कौए से सीखनी चाहिए।

जो मिल जाए, उसी पर संतोष करना, गहरी नींद लेना, चौकन्ना रहना, जरा-सी आहट होने पर जाग जाना, स्वामी के प्रति भक्ति भाव रखना और समय पड़ने पर शत्रु का डटकर सामना करना, ये छः गुण मनुष्य को कुत्ते से सीखने चाहिए। इन गुणों से वह सदैव विजयी रहता है।



॥ अथ सप्तम अध्याय ॥

अर्थनाशं मनस्तापं गृहे दुश्चरितानि च।
वंचनं चाऽपमानं च मतिमान्न प्रकाशयेत्॥

बुद्धिमान पुरुष धन के नाश को, मन के संताप को, गृहिणी के दोषों को, किसी धूर्त ठग के द्वारा ठगे जाने को और अपमान को किसी से नहीं कहते॥1॥

आचार्य चाणक्य ने यहां मनुष्य की सहनशक्ति की ओर इशारा करते हुए कहा है कि बुद्धिमान व्यक्ति वही है जो अपने और अपने परिवार के नुकसानों और दोषों को छिपाकर सहन कर लेता है क्योंकि उनका प्रदर्शन करने से केवल जग-हंसाई ही होती है। ऐसी बातों को कभी भी अन्य व्यक्तियों के सामने उजागर नहीं करना चाहिए।

धनधान्यप्रयोगेषु विद्यासंग्रहणेषु च।
आहारे व्यवहारे च त्यक्तलज्जः सुखी भवेत्॥

धन और अन्न के लेन-देन में, विद्या ग्रहण करते समय, भोजन और अन्य व्यवहारों में संकोच न रखने वाला व्यक्ति सुखी रहता है॥2॥

आचार्य चाणक्य का मानना है कि कई बार संकोच की प्रवृत्ति के कारण मनुष्य को हानि उठानी पड़ती है। मनुष्य के लिए यह जरूरी है कि किसी भी आर्थिक व्यवहार में उसे लिखा-पढ़ी कर लेनी चाहिए। इसमें उसे जरा भी संकोच नहीं करना चाहिए। इसके अलावा विद्या लेते समय, भोजन करते समय कभी संकोच नहीं करना चाहिए।

संतोषाऽमृततृप्तानां यत्सुखं शान्तचेतसाम्।
न च तद् धनलुब्धानामितश्चेतश्च धावताम्॥

शान्त चित्त वाले संतोषी व्यक्ति को संतोष रूपी अमृत से जो सुख प्राप्त होता है, वह इधर-उधर भटकने वाले धन लोभियों को नहीं होता।।3।।

आचार्य चाणक्य ने उपरोक्त श्लोक के संदर्भ में महर्षि पतंजलि के कथन को देखें तो पाते हैं, संतोष से सर्वश्रेष्ठ सुख की प्राप्ति होती है। याचक दीनता प्रकट करता है, धनी गर्व करता है तथा और अधिक की इच्छा करता है, जिसका धन नष्ट हो गया वह शोक करता है, पर जो संतोषी है, वह सुखी है।

मनुष्य को चाहिए कि उसको जो प्राप्त है, जिससे उसकी आवश्यक आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाती है उस पर संतोष करे। कहा गया है, गोधन, गजधन और रतनधन सब धन धूल के समान है। जब संतोष धन इंसान के पास आ जाता है तो वह ध न सभी धन से श्रेष्ठ होता है।

संतोषस्त्रिषु कर्त्तव्यः स्वदारे भोजने धने।
त्रिषु चैव न कर्त्तव्योऽध्ययने तपदानयोः॥

अपनी स्त्री, भोजन और धन, इन तीनों में संतोष रखना चाहिए और विद्या अध्ययन, तप और दान करने-कराने में कभी संतोष नहीं करना चाहिए।।4।।

भाग्य से अधिक कुछ नहीं मिलता। भाग्य से ही श्रेष्ठ पत्नी, अच्छा भोजन और विपुल सम्पत्ति प्राप्त होती है। इन्हें जितना और जैसा मिले, उसी पर संतोष करना चाहिए। दूसरी ओर विद्या संग्रह की कोई सीमा नहीं होती। जप और दान करने-कराने से यश प्राप्त होता है।

विप्रयोर्विप्रवह्न्योश्च दम्पत्योः स्वामिभृत्ययोः।
अंतरेण न गंतव्यं हलस्य वृषभस्य च॥

दो ब्राह्मणों के बीच से, अग्नि और ब्राह्मण के बीच से, पति और पत्नी के बीच से, स्वामी और सेवक के बीच से तथा हल और बैल के बीच से नहीं गुजरना चाहिए।।5।।

जीवन में सजगता बहुत जरूरी है इसीलिए चाणक्य का कहना है कि दो ब्राह्मणों के बीच से गुजरने का अर्थ यही है कि आप उनके वाद-विवाद में विघ्न डाल रहे हैं। अतः कभी उनके बीच से होकर न निकलें। ब्राह्मण और अग्नि के बीच से गुजरने का अर्थ यही है कि आप उनके अग्निहोत्र में विघ्न डाल रहे हैं। पति-पत्नी तथा स्वामी और सेवक के बीच में जब वार्तालाप चल रहा हो, तब बीच से गुजरकर आप उनकी बातों में विघ्न डालते हैं।

इसी तरह बैल और हल के बीच से निकलते वक्त चोट लग जाने का भय बना रहता है। अतः इन बातों का ध्यान रखना चाहिए।

पादाभ्यां न स्पृशेदाग्नि गुरुं ब्राह्मणमेव च।
नैव गां न कुमारीं च न वृद्धं न शिशुं तथा।।

पैर से अग्नि, गुरु, ब्राह्मण, गौ, कन्या, वृद्ध और बालक को कभी नहीं छूना चाहिए।।6।।

इन्हें पैर से स्पर्श करने पर पाप लगता है क्योंकि ये

सभी आदरणीय हैं, पूजनीय हैं। इनको पैर से छूना इनका अपमान माना जाता है, इनकी उपेक्षा मानी जाती है।

शकटं पंचहस्तेन दशहस्तेन वाजिनम्।
हस्ती शतहस्तेन देशत्यागेन दुर्जनम्।।

बैलगाड़ी से पांच हाथ, घोड़े से दस हाथ, हाथी से हजार हाथ दूर बचकर रहना चाहिए और दुष्ट पुरुष (दुष्ट राजा) का देश ही छोड़ देना चाहिए।। 7।।

गाड़ी में जुते हुए बैल सींग मार सकते हैं, घोड़ा दुलत्ती मार सकता है, हाथी अपनी सूंड़ में लपेटकर पटक सकता है और दुष्ट राजा तो जीवन ही खत्म कर सकता है। दुष्ट से सदैव बचकर रहना ही उचित है। उसके लिए अगर देश त्यागना पड़े तो वह भी करना चाहिए।

जो जितना अधिक दुष्ट है, उससे उसी अनुपात में दूरी रखते हुए जीवन-यापन करना अच्छा होता है।

हस्ती अंकुशहस्तेन वाजी हस्तेन ताड्यते।
शृंगी लगुडहस्तेन खड्गहस्तेन दुर्जनः।।

हाथी को अंकुश से, घोड़े को चाबुक से, सींग वाले बैल को डंडे से और दुष्ट व्यक्ति को वश में करने के लिए हाथ में तलवार लेना आवश्यक है।। 8।।

आचार्य चाणक्य के अनुसार दुष्ट व्यक्ति को आसानी से न तो वश में किया जा सकता है और न उसे सुधारा जा सकता है।

ऐसे व्यक्ति को ठीक करने के लिए कभी-कभी उसे तलवार से मर्मान्तक चोट पहुंचानी पड़ती है। कभी-कभी उसे खत्म भी करना पड़ता है।

तुष्यन्ति भोजने विप्रा मयूराः घनगर्जिते।
साधवः परसम्पत्तौ खलः परविपत्तिषु।।

ब्राह्मण भोजन से संतुष्ट होते हैं, मोर बादलों के गर्जन से, साधु लोग दूसरों की समृद्धि देखकर और दुष्ट लोग दूसरों पर विपत्ति आई देखकर प्रसन्न होते हैं।।9।।

चाणक्य ने इस श्लोक के माध्यम से एक बार फिर दुष्ट व्यक्ति के स्वभाव की व्याख्या की है। दुष्ट का स्वभाव ऐसा बन चुका होता है कि वह दूसरों को हमेशा विपत्ति में देखकर प्रसन्न होता है। कहा गया है—जैसे सज्जन दूसरों का उपकार करने में प्रसन्न होता है वैसे ही दुर्जन अपकार करने के लिए सदा तैयार रहता है।

अनुलोमेन बलिनं प्रतिलोमेन दुर्जनम्।
आत्मतुल्यबलं शत्रुं विनयेन बलेन वा।।

अपने से शक्तिशाली शत्रु को विनयपूर्वक उसके अनुसार चलकर, दुर्बल शत्रु पर अपना प्रभाव डालकर और समान बल वाले शत्रु को अपनी शक्ति से या फिर विनम्रता से, जैसा अवसर हो उसी के अनुसार व्यवहार करके अपने वश में करना चाहिए।।10।।

यहां चाणक्य ने शत्रु से व्यवहार करते समय इस बात की ओर इशारा किया है कि शत्रु से व्यवहार करने से पूर्व उसकी शक्ति और सामर्थ्य का पूर्वानुमान लगा लेना चाहिए।

बाहुवीर्यं बल राज्ञो ब्राह्मणो ब्रह्मविद् बली।
रूपयौवनमाधुर्यं स्त्रीणां बलमुत्तमम्।।

राजा की शक्ति उसके बाहुबल में, ब्राह्मण की उसके तत्त्वज्ञान में और स्त्रियों की उनके सौंदर्य तथा माधुर्य में होती है।। 11।।

राजा के बाहुबल और उसकी सेना के द्वारा राजा की

शक्ति को आंका जाता है, ब्राह्मण की शक्ति को उसकी विद्वता से परखा जाता है और स्त्री को उसके सौंदर्य एवं उसके मधुर-व्यवहार से जांचा जाता है, अर्थात प्रत्येक वस्तु में अपना अलग-अलग गुण होता है, वह गुण उसी को अच्छा लगता है, दूसरे को नहीं।

नाऽत्यन्तं सरलैर्भाव्यां गत्वा पश्य वनस्थलीम्।
छिद्यन्ते सरलास्तत्र कुब्जास्तिष्ठन्ति पादपाः॥

संसार में अत्यंत सरल और सीधा होना भी ठीक नहीं है। वन में जाकर देखो कि सीधे वृक्ष ही काटे जाते हैं और टेढ़े-मेढ़े वृक्षयों ही छोड़ दिए जाते हैं॥12॥

आचार्य चाणक्य ने इस श्लोक में जीवन की सच्चाई की ओर संकेत किया है। सीधापन आदमी की कमजोरी का परिचायक माना जाता है।

उसे हर कोई सताने लगता है, परंतु टेढ़े स्वभाव के दुष्ट व्यक्तियों से कोई नहीं उलझता। सभी उनसे बचना चाहते हैं।

यत्रोदकं तत्र वसन्ति हंसाः, तथैव शुष्कं परिवर्जयन्ति।
न हंसतुल्येन नरेणाभाव्यम्, पुनस्त्यजन्ते पुनराश्रयन्ते॥

जिस सरोवर में जल रहता है, हंस वहीं रहते हैं और सूखे सरोवर को छोड़ देते हैं। पुरुष को ऐसे हंसों के समान नहीं होना चाहिए कि बार-बार स्थान बदलें॥13॥

आचार्य चाणक्य का मत है कि मनुष्य के लिए अपना स्वार्थ ही प्रमुख नहीं होना चाहिए। जिस स्थान विशेष से एक बार नाता जोड़ लिया जाए तो उसे कठिनाई आने पर छोड़ना नहीं चाहिए।

उपार्जितानां वित्तानां त्याग एव हि रक्षणम्।
तड़ागोदरसंस्थानां परिस्त्राव इवाम्भसाम्।।

कमाए हुए धन का दान करते रहना ही उसकी रक्षा है। जैसे तालाब के पानी का बहते रहना उत्तम है।।14।।

तालाब का पानी एक ही स्थान पर रुका रहेगा तो वह सड़ जाएगा।

इसी प्रकार उपार्जित धन में से दान नहीं किया जाएगा तो उसका महत्त्व ही खत्म हो जाएगा।

यस्याऽर्थास्तस्य मित्राणि यस्याऽर्थातस्य बांधवाः।
यस्याऽर्थाः स पुमांल्लोके यस्याऽर्थाः स च जीवति।।

संसार में जिसके पास धन है, उसी के सब मित्र होते हैं, उसी के सब बंधु-बांधव होते हैं, वही श्रेष्ठ पुरुष गिना जाता है और वही ठाठ-बाट से जीता है।।15।।

आचार्य चाणक्य ने उपरोक्त श्लोक के माध्यम से बताया है कि धन के बिना कोई कार्य नहीं चलता।

धन परमात्मा नहीं है, परंतु उसका छोटा भाई अवश्य है। जिसके पास धन है वही कुलीन है, विद्वान है, शास्त्रयज्ञ है, गुणी है, वक्ता है। धन कमाओ मगर ईमानदारी से कमाओ।

स्वर्गस्थितानामिह जीवलोके, चत्वारि चिह्नानि वसन्ति देहे।
दानप्रसंगो मधुरा च वाणी, देवाऽर्चनम् ब्राह्मणतर्पणं च।।

स्वर्ग से इस लोक में आने पर लोगों में चार लक्षण प्रकट होते हैं—दान देने की प्रवृत्ति, मधुर वाणी, देवताओं का पूजन और ब्राह्मणों को भोजन देकर संतुष्ट करना।।16।।

इन चार गुणों द्वारा उनकी दिव्यता का पता चलता है। अपने गुणों से वे पृथ्वी पर स्वर्ग के सभी सुखों का अहसास करा देते हैं।

अत्यन्तकोपः कटुका च वाणी, दरिद्रता च स्वजनेषु वैरम्।
नीचप्रसंगः कुलहीनसेवा, चिह्नानि देहे नरकास्थितानाम्॥

अत्यन्त क्रोध करना, कड़वी वाणी बोलना, दरिद्रता और अपने सगे-सम्बन्धियों से वैर-विरोध करना, नीच पुरुषों का संग करना, छोटे कुल के व्यक्ति की नौकरी अथवा सेवा करना—ये छः दुर्गुण ऐसे हैं जिनसे युक्त मनुष्य को पृथ्वीलोक में ही नरक के दुःखों का आभास हो जाता है।। 17।।

इस श्लोक का अर्थ यह है कि क्रोध, कड़वी बात, द्वेष, कुसंग, दरिद्रता और नीच व्यक्ति की सेवा दुष्ट लोगों के लक्षण हैं। इन दुर्गुणों के कारण वे यहीं पर नरक के समान यातना भोगते रहते हैं।

गम्यते यदि मृगेन्द्र-मंदिरं, लभ्यते करिकपोल मौक्तिकम्।
जम्बुकाऽऽलयगते च प्राप्यते, वत्स-पुच्छ-खर-चर्म खंडनम्॥

मनुष्य यदि सिंह की मांद के निकट जाता है तो गजमोती पाता है और सियार की मांद के पास से तो बछड़े की पूंछ और गधे के चमड़े का टुकड़ा ही पाता है।। 18।।

भाव यह है कि बड़े लोगों के पास जाने से धन-सम्पत्ति और ऐश्वर्य प्राप्त होता है और छोटे तथा नीच लोगों की संगति करने से सिवाय दुःख के और कुछ भी प्राप्त नहीं होता।

शुनः पुच्छमिव व्यर्थ जीवितं विद्यया विना।
न गुह्यगोपने शक्तं न च दंशनिवारणे॥

जिस प्रकार कुत्ते की पूंछ गुप्त स्थानों को ढांप सकने में

व्यर्थ है और मच्छरों को काटने से भी नहीं रोक पाती, उसी प्रकार बिना विद्या के मनुष्य जीवन व्यर्थ है।। 19।।

जिस प्रकार कुत्ते की पूंछ से न तो उसके गुप्त अंग छिपते हैं और न वह मच्छरों को काटने से रोक सकती है, उसी प्रकार विद्या-विहीन पुरुष मूर्खता के कारण अपनी रक्षा करने में असमर्थ होता है। वह अपना भरण-पोषण भी ठीक से नहीं कर पाता।

वाचः शौचं च मनसः शौचमिन्द्रयनिग्रहः।
सर्वभूते दया शौचं एतच्छौचं पराऽर्थिनाम्।।

बोलचाल अथवा वाणी में पवित्रता, मन की स्वच्छता और यहां तक कि इन्द्रियों को वश में रखकर पवित्र रहने का भी कोई महत्त्व नहीं, जब तक कि मनुष्य के मन में जीवनमात्र के लिए दया की भावना उत्पन्न नहीं होती।

सच्चाई यह है कि परोपकार ही सच्ची पवित्रता है। बिना परोपकार की भावना के मन, वाणी और इन्द्रियां पवित्र नहीं हो सकतीं। व्यक्ति को चाहिए कि वह अपने मन में दया और परोपकार की भावना को बढ़ाए।।20।।

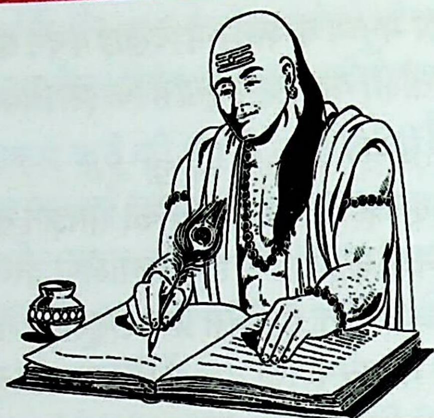
आचार्य चाणक्य ने उपरोक्त श्लोक के द्वारा अनेक पवित्रताओं की बात की है। ब्रह्मचर्य, तप, क्षमा, शराब और मांस का त्याग, मर्यादा के भीतर रहना और मन को वश में करना, ये सारी बातें शौच पवित्रता के लक्षण हैं।

पुष्पे गंध तिले तैलं काष्ठेऽग्निं पयसि घृतम्।
इक्षौ गुडं तथा देहे पश्याऽऽत्मानं विवेकतः।।

जिस प्रकार फूल में गंध, तिलों में तेल, लकड़ी में आग, दूध में घी, गन्ने में मिठास आदि दिखाई न देने पर भी विद्यमान रहते

हैं, उसी प्रकार मनुष्य के शरीर में दिखाई न देने वाली आत्मा निवास करती है। यह रहस्य ऐसा है कि इसे विवेक से ही समझा जा सकता है।।21।।

मनुष्य को चाहिए कि वह इस रहस्य को समझने का प्रयास करे कि वह शरीर न होकर आत्मा है। आत्मारूपी तत्त्व इस देह में उसी प्रकार विद्यमान रहता है, जिस प्रकार फूलों में गंध, तिलों में तेल और लकड़ी में अग्नि तथा गन्ने में मिठास और दूध में घी विद्यमान होने पर भी दिखाई नहीं देते।



॥अथ अष्टम अध्याय॥

अधमा धनमिच्छन्ति धनं मानं च मध्यमाः।
उत्तमा मानमिच्छन्ति मानो हि महतां धनम्॥

निकृष्ट लोग धन की कामना करते हैं, मध्यम लोग धन और यश दोनों चाहते हैं और उत्तम लोग केवल यश ही चाहते हैं क्योंकि मान-सम्मान सभी प्रकार के धनों में श्रेष्ठ है॥1॥

जिस जीवन में मनुष्य को मान-सम्मान नहीं मिलता, वह जीवन धन से भरपूर होने पर भी व्यर्थ है। धन नष्ट हो जाता है, परंतु आदमी का यश उसके मरने के बाद भी अमर रहता है।

इक्षुरापः पयो मूलं ताम्बूलं फलमौषधम्।
भक्षयित्वापि कर्तव्याः स्नानदानाऽऽदिका क्रियाः॥

ईख, जल, दूध, मूल (कन्द), पान, फल और दवा आदि का सेवन करके भी, स्नान-दान आदि क्रियाएं की जा सकती हैं॥2॥

भाव यह है कि यदि रोगी व्यक्ति औषधि, जल, दूध, फल आदि लेने के उपरान्त कर्मकांड करता है तो वह पाप कर्म का भागी नहीं होता।

दीपो भक्ष्यते ध्वान्तं कज्जलं च प्रसूयते।
यदन्नं भक्ष्यते नित्यं जायते तादृशी प्रजा।।

जैसे दीपक का प्रकाश अंधकार को खा जाता है और कालिख को पैदा करता है, उसी तरह मनुष्य सदैव जैसा अन्न खाता है, वैसी ही उसकी संतान होती है।।3।।

यदि मनुष्य गलत तरीकों से कमाए धन का अन्न खाता है तो उसकी संतान भी उसी तरह के गलत कार्यों में लग जाएगी और यदि आदमी ईमानदारी से कमाए अन्न को खाता है तो उसकी संतान भी ईमानदार होगी इसलिए परिश्रम और ईमानदारी से प्राप्त अन्न खाना ही श्रेष्ठ है।

वित्तं देहि गुणान्वितेषु मतिमन्नान्यत्र देहि क्वचित्,
प्राप्तं वारिनिधेर्जलं घनमुखे माधुर्ययुक्तं सदा।
जीवान् स्थावरजंगमांश्च सकलान् संजीव्य भूमण्डलम्,
भूयः पश्य तदेव कोटिगुणितं गच्छन्तमम्भोनिधिम्।।

हे बुद्धिमान पुरुष! धन गुणवानों को दे, अन्य को नहीं। देखो, समुद्र का जल मेघों के मुंह में जाकर सदैव मीठा हो जाता है और पृथ्वी के चर–अचर जीवों को जीवनदान देकर कई करोड़ गुना होकर फिर से समुद्र में चला जाता है।।4।।

दान की महिमा अपरम्पार है, परंतु दान उसे ही देना चाहिए जो सुपात्र हो। सुपात्र के पास जाने से दान दी गई वस्तु अथवा धन का समुचित उपयोग होता है। दुष्ट के पास जाकर दान की गई वस्तु का उपयोग स्वार्थ से प्रेरित होकर ही हो पाता है। मेघों के पास जाकर समुद्र का खारा पानी मीठा हो जाता है और करोड़ों जीवों की प्यास बुझाकर फिर से सागर में जा मिलता है। इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि उचित व्यक्ति को दिया गया दान ही अच्छा होता है।

चाण्डालानां सहस्त्रे च सूरिभिस्तत्त्वदर्शिभिः।
एको हि यवनः प्रोक्तो न नीचो यवनात्परः।।

तत्त्वदर्शी मुनियों ने कहा है कि हजारों चांडालों के बराबर एक यवन (म्लेच्छ) होता है। यवन से बढ़कर कोई नीच नहीं है।।5।।

यहां तात्कालिक यवन आक्रमणकारियों से त्रस्त भारत–भूमि की दारुण दशा देखकर ही आचार्य चाणक्य ने यवनों को चांडाल कहा है। यहां यवनों को आप अधर्मी भी कह सकते हैं, जिनकी हिन्दू धर्म में आस्था नहीं है।

तैलाभ्यंगे चिताधूमे मैथुने क्षौरकर्मणि।
तावद्भवति चांडालो यावत् स्नानं न चाऽऽचरेत।।

(शरीर में) तेल लगाने पर, चिता का धुआं लगने पर, स्त्री–संभोग करने पर, बाल कटवाने पर, मनुष्य तब तक चांडाल, अर्थात अशुद्ध ही रहता है, जब तक वह स्नान नहीं कर लेता।।6।।

आचार्य चाणक्य ने प्रस्तुत श्लोक के माध्यम से सांसारिक रीति–नीति की जानकारी दी है। श्मशान भूमि से चिता का धुआं लगने पर तथा संभोग करने के बाद स्नान की बात तो सभी की जानकारी में है पर तेल मालिश या हजामत बनवाने के बाद स्नान करने का कार्य इतना महत्त्वपूर्ण है यह कम लोग ही जानते हैं।

अजीर्णे भेषजं वारि जीर्णे वारि बलप्रदम्।
भोजने चामृतं वारि भोजनान्ते विषं प्रदम।।

अपच होने पर पानी दवा है, पचने पर बल देने वाला है, भोजन के समय थोड़ा–थोड़ा जल अमृत के समान है और भोजन के अंत में जहर के समान फल देता है।।7।।

आचार्य चाणक्य ने आयुर्वेदिक चिकित्सा का भी ज़गह-जगह अच्छा वर्णन किया है। इससे पता चलता है कि उन्हें आयुर्वेद का अच्छा ज्ञान था।

हतं ज्ञानं क्रियाहीनं हतश्चाऽज्ञानतो नरः।
हतं निर्नायकं सैन्यं स्त्रियो नष्टा ह्यभर्तृकाः॥

बिना क्रिया के ज्ञान व्यर्थ है, ज्ञानहीन मनुष्य मृतक के समान है, सेनापति के बिना सेना नष्ट हो जाती है और पति के बिना स्त्रियां पतित हो जाती हैं, अर्थात पति के बिना उनका जीवन व्यर्थ है॥8॥

यदि पढ़ा-लिखा व्यक्ति विद्या को व्यवहार में नहीं लाता तो उसका विद्या प्राप्त करना व्यर्थ है। इसी तरह अज्ञानी व्यक्ति के जीवन को भी व्यर्थ कहा गया है। भले-बुरे की समझ तो समझदार अर्थात ज्ञानी व्यक्ति को ही हो सकती है परंतु मूर्ख व्यक्ति को जब इसका ज्ञान ही नहीं तो वह भला किसका हित कर सकता है। सेनापति के अभाव में सेना दिग्भ्रमित होकर नष्ट हो जाती है और जिस स्त्री के सिर पर पति का साया न हो, उसकी रक्षा भला कौन करता है। सभी उसे पतन की ओर धकेलते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि आचरण के बिना ज्ञान व्यर्थ है तथा पति के बिना स्त्री का कोई अस्तित्व नहीं होता।

वृद्धकाले मृता भार्या बंधुहस्ते गतं धनम्।
भोजनं च पराधीनं तिस्त्रः पुंसां विडम्बना॥

बुढ़ापे में स्त्री का मर जाना, बंधु के हाथों में धन का चला जाना और दूसरे के आसरे पर भोजन का प्राप्त होना, ये तीनों ही स्थितियां पुरुषों के लिए दुःखदायी हैं॥9॥

वृद्धावस्था में पत्नी ही सबसे बड़ा सहारा होती है और बचाकर रखा हुआ धन ही काम आता है। इससे आदमी भोजन के

लिए पराधीन नहीं होता। अतः पत्नी भी यदि साथ छोड़ जाए तो बुढ़ापे के लिए थोड़ा धन बचाकर जरूर रखना चाहिए।

नाग्निंहोत्रं विना वेदा न च दानं विना क्रिया।
न भावेन विना सिद्धिस्तस्माद् भावो हि कारणम्॥

यज्ञ न करने वाले का वेद पढ़ना व्यर्थ है। बिना दान के यज्ञ करना व्यर्थ है। बिना भाव के सिद्धि नहीं होती इसलिए भाव अर्थात प्रेम ही सब में प्रधान है।।10।।

भाव के बिना कोई भी कार्य सम्पन्न नहीं होता। अतः सभी कार्यों में आस्था जरूरी है।

काष्ठपाषाणधातूनां कृत्वा भावेन सेवनम्।
श्रद्धया च तयां सिद्धिस्तस्य विष्णोः प्रसीदति॥

लकड़ी, पत्थर और धातु–सोना, चांदी, तांबा, पीतल आदि की बनी देवमूर्ति में देव–भावना अर्थात देवता को साक्षात रूप से विद्यमान समझकर ही श्रद्धासहित उसकी पूजा–अर्चना करनी चाहिए। जो मनुष्य जिस भाव से मूर्ति का पूजन करता है, श्री विष्णुनारायण की कृपा से उसे वैसी ही सिद्धि प्राप्त होती है।।11।।

सच्ची श्रद्धा ही सच्ची पूजा–अर्चना है। मूर्ति चाहे जिस धातु की भी हो, जो मनुष्य जिस भाव से मूर्ति का पूजन करता है, उस पर ईश्वर उतना ही प्रसन्न होता है।

शान्तितुल्यं तपो नास्ति न संतोषात् परंसुखम्।
न तृष्णायाः परा व्याधिर्न च धर्मो दयापरः॥

शान्ति के बराबर दूसरा तप नहीं है, संतोष से बढ़कर कोई सुख नहीं है, लालच से बड़ा कोई रोग नहीं है और दया से बड़ा कोई धर्म नहीं है।।12।।

शान्ति, संतोष और दया से जीवन सुखमय होता है और लालच आदमी को रोग रूपी अंधे कुएं में धकेल देता है। 'लालच बुरी बला' की कहावत जगत प्रसिद्ध है। स्वार्थी आदमी कभी सुखी नहीं हो सकता। क्रोध और तृष्णा का त्याग कर देना चाहिए।

क्रोधो वैवस्वतो राजा तृष्णा वैतरणी नदी।
विद्या कामदुधा धेनुः संतोषो नन्दनं वनम्।।

क्रोध यमराज की मूर्ति है, लालच वैतरणी नदी (नरक में बहने वाली नदी) है, विद्या कामधेनु गाय है और संतोष इंद्र के नन्दन वन जैसा सुख देने वाला है।।13।।

क्रोध आदमी को मृत्यु की ओर धकेलता है, लालच अनेक कष्टों को जन्म देता है, विद्या मनोवांछित फल देने वाली है और संतोष से आत्म-सुख मिलता है।

गुणो भूषयते रूपं शीलं भूषयते कुलम्।
सिद्धिर्भूषयते विद्यां भोगो भूषयते धनम्।।

गुण से रूप की शोभा होती है, शील से कुल की शोभा होती है, सिद्धि से विद्या की शोभा होती है और भोग से धन की शोभा होती है।।14।।

यहां भोग से आशय यह है कि धन का उपयोग जब तक सत्कर्मों में नहीं किया जाता, तब तक धन की शोभा नहीं हो सकती।

इसी प्रकार सौंदर्य तभी शोभा पाता है, जब उसे धारण करने वाला गुणी भी हो। विद्या वही शोभित होती है, जो अपने लक्ष्य को प्राप्त कर ले और आदमी का शील-स्वभाव उसके कुल की शोभा बढ़ाने वाला होता है।

निर्गुणस्य हतं रूपं दुःशीलस्य हतं कुलम्।
असिद्धस्य हता विद्या अयभोगेन हतं धनम्।।

गुणहीन व्यक्ति की सुंदरता व्यर्थ है, दुष्ट स्वभाव वाले व्यक्ति का कुल नष्ट होने योग्य है, यदि लक्ष्य की सिद्धि न हो तो विद्या व्यर्थ है, जिस धन का सदुपयोग न हो, वह धन व्यर्थ है।।15।।

आचार्य चाणक्य ने प्रस्तुत श्लोक में गुण और आचरण की बात कही है, वहीं विद्या के विषय में भी बताया है। विद्या जो आजीविका उपलब्ध न करा सके वह उसी तरह व्यर्थ है जैसे धन उपयोग में आए बगैर अनुपयोगी पड़ा हुआ है।

शुद्धं भूमिगतं तोयं शुद्धा नारी पतिव्रता।
शुचिः क्षेमकरो राजा संतोषी ब्राह्मणः शुचिः।।

पृथ्वी के भीतर का पानी शुद्ध होता है, पतिव्रता स्त्री पवित्र होती है, कल्याण करने वाला राजा पवित्र होता है और संतोषी ब्राह्मण पवित्र होता है।।16।।

आचार्य चाणक्य ने प्रस्तुत श्लोक के माध्यम से जानकारी दी है कि भूमि के भीतर प्रविष्ट हुआ जल पवित्र होता है। वर्षा का अधिकांश जल तो बहकर नाले–नदियों द्वारा समुद्र में चला जाता है। यही जल कुओं, नदियों और तालाबों में भूमि के स्रोतों से आता रहता है।

असंतुष्टाः द्विजा नष्टाः संतुष्टाश्च महीभृतः।
सलज्जा गणिका नष्टाः निर्लज्जाश्च कुलांगना।।

असंतोषी ब्राह्मण और संतोषी राजा (जल्दी ही) नष्ट हो जाते हैं। लज्जाशील वेश्या और निर्लज्ज कुलीन स्त्री नष्ट हो जाती है।।17।।

लोभ से प्रेरित ब्राह्मण आदर का पात्र नहीं रहता और

महत्त्वाकांक्षा न रखने वाला राजा आलसी और अकर्मण्य होकर नष्ट हो जाता है। संकोच करने वाली वेश्या ग्राहकों को प्रसन्न न करने के कारण अपना धंधा चौपट कर लेती है और बेशर्म कुलीन स्त्री दूसरों की विषय-वासना का शिकार होकर पतित हो जाती है।

किं कुलेन विशालेन विद्याहीनेन देहिनाम।
दुष्कुलीनोऽपि विद्वांश्च देवैरपि सुपूज्यते।।

विद्याविहीन अर्थात मूर्ख व्यक्तियों के बड़े कुल के होने से क्या लाभ? विद्वान व्यक्ति का नीच कुल भी देवगणों से सम्मान पाता है।।18।।

विद्याविहीन व्यक्ति पशु के समान है। विद्वान व्यक्ति का ही महत्त्व है।

विद्वान प्रशस्यते लोके विद्वान् गच्छति गौरवम्।
विद्यया लभ्यते सर्वं विद्या सर्वत्र पूज्यते।।

संसार में विद्वान की ही प्रशंसा होती है, विद्वान व्यक्ति ही सभी जगह पूजे जाते हैं। विद्या से ही सब कुछ मिलता है, विद्या की सब जगह पूजा होती है।।19।।

यश की प्राप्ति विद्या के द्वारा ही होती है। जो व्यक्ति जितना बड़ा विद्वान होगा, उसका सम्मान उतना ही ज्यादा होगा।

मांसभक्षैः सुरापानैर्मूर्खैश्चाक्षरवर्जितैः।
पशुभिः पुरुषाकारैर्भाराऽऽक्रान्ता च मेदिनी।।

जो व्यक्ति मांस और मदिरा का सेवन करते हैं, वे इस पृथ्वी पर बोझ हैं। इसी प्रकार जो व्यक्ति निरक्षर हैं, वे भी पृथ्वी पर बोझ हैं। इस प्रकार के मनुष्य रूपी पशुओं के भार से यह पृथ्वी हमेशा पीड़ित और दबी रहती है।।20।।

जिस धरती पर मांस खाने वाले, शराब पीने वाले और मूर्खों की बहुतायत होती है, वहां के पुरुष पशुओं के समान होते हैं। ऐसे दुष्ट पशुरूपधारी पुरुष धरती के लिए बोझ होते हैं और इस पर रहने वाले सभी प्राणियों को कष्ट ही पहुंचाते हैं।

अन्नहीनो दहेद् राष्ट्रं मंत्रहीनश्च ऋत्विजः।
यजमानं दानहीनो नास्ति यज्ञसमो रिपुः॥

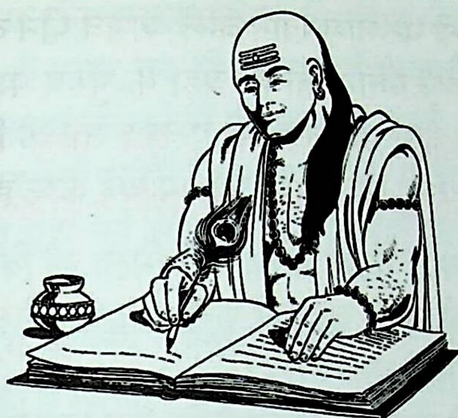
अन्नहीन यज्ञ राजा को, मंत्रहीन यज्ञ कराने वाले ऋत्विजों को और दानहीन यज्ञ यजमान को जलाता है। यज्ञ के बराबर कोई शत्रु नहीं है।।21।।

भाव यह है कि यज्ञ बड़ी सावधानी और मंत्रों की शुद्धता के साथ करना चाहिए। यज्ञ करने के उपरांत यजमान द्वारा दान भी दिया जाना चाहिए।

रूपयौवनसम्पन्ना विशालकुलसम्भवाः।
विद्याहीना न शोभन्ते निर्गन्धा इव किंशुका॥

रूप-यौवन से सम्पन्न, बड़े कुल में पैदा होते हुए भी, विद्याविहीन पुरुष, बिना गंध के फूल पलाश के समान शोभा अर्थात आदर को प्राप्त नहीं होता।।22।।

विद्या का ही सर्वत्र आदर होता है।



॥ अथ नवम अध्याय ॥

**मुक्तिमिच्छसि चेत्तात! विषयान् विषवत् त्यज।
क्षमाऽऽर्गवं दय शौचं सत्यं पीयूषवत् पिब ॥**

यदि मुक्ति चाहते हो तो समस्त विषय-वासनाओं को विष के समान छोड़ दो और क्षमाशीलता, नम्रता, दया, पवित्रता और सत्यता को अमृत की भांति पियो अर्थात अपनाओ।।1।।

भाव यह है कि मनुष्य मोह-माया तथा इच्छाओं का परित्याग करके क्षमा, सहनशीलता, दया, पवित्रता और सत्य का आचरण करे तो उसे मोक्ष प्राप्त हो सकता है। जन्म-मरण के बंधनों से छूटना ही मोक्ष है।

**परस्परस्य मर्माणि ये भाषन्ते नराधमाः।
त एव विलयं यान्ति वल्मीकोदरसर्पवत् ॥**

जो नीच व्यक्ति परस्पर की गई गुप्त बातों को दूसरों से कह देते हैं, वे ही दीमक के घर में रहने वाले सांप की भांति नष्ट हो जाते हैं।।2।।

मित्र के गुप्त रहस्यों को कभी प्रकट न करें। इससे केवल शत्रुता ही पैदा होती है।

गंधः सुवर्णे फलमिक्षुदंडे, नाऽकारि पुष्पं खलु चंदनस्य।
विद्वान धनाढ्यश्च नृपश्चिरायुः, धातुः पुराकोऽपि न बुद्धिदोऽभूत् ॥

ब्रह्मा को शायद कोई बताने वाला नहीं मिला जो कि उन्होंने सोने में सुगंध, ईख में फल, चंदन में फूल, विद्वान को धनी और राजा को चिरंजीवी नहीं बनाया।।3।।

यह सृष्टिकर्त्ता की कैसी विडम्बना है कि उसने स्वर्ण में सुगंध नहीं डाली, गन्ने पर फल नहीं लगाया, चंदन के वृक्ष पर फूल नहीं उगाए, विद्वान को धनवान नहीं बनाया और राजा को, जो कि प्रजापालक है, दीर्घजीवी नहीं बनाया।

सर्वौषधीनाममृता प्रधाना, सर्वेषु सौख्येष्वशनं प्रधानम्।
सर्वेन्द्रियाणां नयनं प्रधानं, सर्वेषु गात्रेषु शिरः प्रधानम् ॥

सभी औषधियों में अमृत प्रधान है, सभी सुखों में भोजन प्रधान है, सभी इन्द्रियों में नेत्र प्रधान है और सारे शरीर में सिर श्रेष्ठ है।।4।।

अमृत से जीवन को अमरता प्राप्त होती है, भोजन से शरीर पुष्ट होता है, तृप्ति प्राप्त होती है, आंखों के बिना सारा संसार ही अंधकार में डूब जाता है और दिमाग के बिना तो चिन्तन ही असंभव है।

दूतो न संचरति खे न चलेच्च वार्ता
पूर्वं न जल्पितमिदं न च संगमोऽस्ति।
व्योम्नि स्थितं रविशशिग्रहणं प्रशस्तं
जानाति यो द्विजवरः स कथं न विद्वान् ॥

न तो आकाश में कोई दूत गया, न इस संबंध में किसी से

बात हुई, न पहले किसी ने इसे बनाया और न कोई प्रकरण ही आया, तब भी आकाश में भ्रमण करने वाले चंद्र और सूर्य के ग्रहण के बारे में जो ब्राह्मण पहले से ही जान लेता है, वह विद्वान क्यों नहीं है? अर्थात् वास्तव में वह विद्वान है, जिसकी गणना से ग्रहों की चाल का सही-सही पता लगाया जाता रहा है।।5।।

आचार्य चाणक्य ने प्रस्तुत श्लोक में उन विद्वानों की विद्वता की प्रशंसा की है जिन्होंने सूर्य-चंद्र की स्थितियों की हमें जानकारी दे रखी है।

आकाश में कोई दूत नहीं जा सकता, न ही वहां किसी से कोई वार्तालाप हो सकता है, न पहले से किसी ने कुछ बता ही रखा है और न वहां किसी से संगम हो सकता है, फिर भी जो ब्राह्मण श्रेष्ठ आकाश में स्थित सूर्य और चंद्रमा के ग्रहण को जान लेता है, वह विद्वान क्यों नहीं है?

विद्यार्थी सेवकः पान्थः क्षुधाऽऽर्तो भयकातरः।
भाण्डारी प्रतिहारी च सप्त सुप्तान् प्रबोधयेत् ॥

विद्यार्थी, नौकर, पथिक, भूख से व्याकुल, भय से त्रस्त, भंडारी और द्वारपाल, इन सातों को सोता हुए देखें तो तत्काल जगा देना चाहिए क्योंकि अपने समस्त कर्मों और कर्त्तव्यों का पालन ये जागकर अर्थात सचेत होकर ही करते हैं।।6।।

विद्यार्थी यदि सोयेगा तो पढ़ेगा कैसे ? नौकर यदि सोयेगा तो डांका पड़ सकता है, मुसाफिर यदि सोयेगा तो लुट जाएगा, भूख से व्याकुल व्यक्ति को भोजन करा देना चाहिए। उसे तो वैसे ही नींद न आएगी। भंडारगृह का स्वामी और द्वारपाल सोते रहेंगे तो चोरों को चोरी करने का अवसर मिल सकता है। अतः इन्हें सदैव सावधान रहना चाहिए।

अहिं नृपं च शार्दूलं किटिं च बालकं तथा।
परश्वानं च मूर्खं च सप्त सुप्तान् बोधयेत् ॥

सांप, राजा, सिंह, बर्र (ततैया) और बालक, दूसरे का कुत्ता तथा मूर्ख व्यक्ति, इन सातों को सोते से नहीं जगाना चाहिए। इन्हें जगाने से हानि ही हो सकती है।।7।।

आचार्य चाणक्य ने उपरोक्त श्लोक में जिन सात को सोते से न जागने की बात कही है उनकी हानि इस प्रकार है—सांप डस लेगा, राजा दंड देगा, व्याघ्र या चीता आक्रमण कर मार डालेगा, बालक रोने लगेगा, दूसरों का कुत्ता जगाए जाने पर काट लेगा, मूर्ख व्यक्ति विवाद करने लगेगा।

अर्थाऽधीताश्च यैर्वेदास्तथा शूद्रान्नभोजिनाः।
ते द्विजाः किं करिष्यन्ति निर्विषा इव पन्नगाः ॥

धन के लिए वेद पढ़ाने वाले तथा शूद्रों के अन्न को खाने वाले ब्राह्मण विषहीन सर्प की भांति क्या कर सकते हैं, अर्थात वे किसी को न तो शाप दे सकते हैं, न वरदान।।8।।

जो ब्राह्मण केवल धन के लिए ही अपनी विद्या को बेचते हैं, शूद्रों के यहां का भोजन करने से भी संकोच नहीं करते, ऐसे ब्राह्मणों की विद्या उस सर्प के समान है, जिसके मुख में विष की थैली ही नहीं है। अर्थात वे किसी को न तो शाप दे सकते हैं, न वरदान।

यस्मिन् रुष्टे भयं नास्ति तुष्टे नैव धनाऽऽगमः।
निग्रहोऽनुग्रहो नास्ति स रुष्टः किं करिष्यति ॥

जिसके नाराज होने का डर नहीं है और प्रसन्न होने से कोई लाभ नहीं है, जिसमें दंड देने या दया करने की सामर्थ्य नहीं है, वह नाराज होकर क्या कर सकता है?।।9।।

भयभीत उसी से हुआ जा सकता है, जिसमें कुछ दंड देने की सामर्थ्य हो। जिसमें ऐसी सामर्थ्य नहीं है, उससे डर कैसा ? अपना हानि-लाभ देखकर ही कोई किसी से प्रभावित होता है।

निर्विषेणाऽपि सर्पेण कर्तव्या महती फणा।
विषमस्तु न चाप्यस्तु घटाटोपो भयंकरः ॥

विषहीन सर्प को भी अपना फन फैलाकर फुफकार करनी चाहिए। विष के न होने पर फुफकार से उसे डराना अवश्य चाहिए।।10।।

यदि विषहीन सांप ऐसा नहीं करेगा तो वह अपना बचाव नहीं कर पाएगा। लोग उसे पत्थर मारेंगे। तात्पर्य यह है कि राजा के पास शक्ति चाहे थोड़ी हो, पर उसे अपनी शक्ति का दिखावा करके शत्रु को भयभीत अवश्य करते रहना चाहिए।

प्रातर्द्यूतप्रसंगेन मध्यान्हे स्त्रीप्रसंगतः।
रात्रौ चौर्यप्रसंगेन कालो गच्छत्ये धीमताम्।।

प्रातःकाल जुआरियों की कथा से (महाभारत की कथा से), मध्याह्न (दोपहर) का समय स्त्री प्रसंग से (रामायण की कथा से) और रात्रि में चोर की कथा से (श्रीमद्भागवत की कथा से) बुद्धिमान लोग अपना समय काटते हैं।।11।।

जुआरियों की कथा को महाभारत की कथा से जोड़कर दिखाया है कि राजनीतिकारों को जुए की लत से कितना भारी नुकसान उठाना पड़ता है। स्त्री-प्रसंग की कथा को रामायण से जोड़कर बताया गया है कि पर स्त्री हरण से कितना बड़ा विनाश होने की संभावना रहती है और चोर की कथा को श्रीमद्भागवत से जोड़कर भगवान श्रीकृष्ण की सोलह हजार रानियों के रहते हुए भी इन्द्रिय-निग्रह की भावना का प्रतिपादन किया गया है।

भाव यह है कि बुद्धिमान वही है जो परस्त्री–गमन से दूर रहता है और सदैव अपनी इन्द्रियों को संयम में रखने का प्रयत्न करता है।

स्वहस्तग्रथिता माला स्वहस्तघृष्चन्दनम्।
स्वहस्तलिखितं स्तोत्रं शक्रयापि श्रियं हरेत्।।

अपने हाथों से गुंथी माला, अपने हाथों से घिसा चंदन और अपने हाथ से लिखा स्तोत्र, इन सबको अपने ही कार्य में लगाने से, देवताओं के राजा इंद्र की श्रीलक्ष्मी भी नष्ट हो जाती है।। 12।।

भाव यह है कि प्रभु–मूर्ति को अपने हाथों से गुंथी माला पहनाने से, अपने हाथों से घिसा चंदन लगाने से और अपने द्वारा रचित स्तुति को गाने से संसार के किसी ऐश्वर्य की आवश्यकता नहीं रहती।

इक्षुदंडास्तिलाः क्षुद्राः कान्ता हेम च मेदिनी।
चन्दनं दधि ताम्बूलं मर्दनं गुणवर्धनम्।।

ईख, तिल, क्षुद्र, स्त्री, स्वर्ण, धरती, चंदन, दही और पान, इनको जितना मसला जाता है, उतनी गुण–वृद्धि होती है।। 13।।

ईख पेरने से रस, तिल मथने से तेल, नीच और स्त्री को ताड़ने से अनुकूलता, स्वर्ण को तपाने से अधिक चमक, धरती में हल चलाने से उपजाऊ शक्ति की वृद्धि, दही मथने से मक्खन निकलता है और चंदन तथा पान को रगड़ने से सुगंध पैदा होती है। भाव यह है कि जीवन में जितनी अधिक साधना की जाती है, उसका उतना ही अधिक फल प्राप्त होता है।

दरिद्रता धीरतया विराजते, कुवस्त्रता शुभ्रतया विराजते।
कदन्नता चोष्णतया विराजते, कुरूपता शीलतया विराजते।।

दरिद्रता के समय धैर्य रखना उत्तम है, मैले कपड़ों को

साफ रखना उत्तम है, घटिया अन्न का बना गर्म भोजन अच्छा लगता है और कुरूप व्यक्ति के लिए अच्छे स्वभाव का होना श्रेष्ठ है।।14।।

भाव यह है कि दरिद्रता में यदि धैर्य रखा जाए तो दुःख नहीं होता। गरीब व्यक्ति धैर्यपूर्वक अपना बुरा समय गुजार लेता है। फटे-पुराने, मैले कपड़ों को यदि साफ-सुथरा करके और उनको अच्छी प्रकार से सीकर पहना जाए तो वे अच्छे लगते हैं। ज्वार-बाजरा-जौ-मक्का आदि घटिया अन्न की बनी रोटी यदि गर्म-गर्म खाई जाए तो स्वादिष्ट लगती है और अच्छे शील-स्वभाव का व्यक्ति यदि कुरूप भी हो तो भी वह अच्छा लगता है।



॥ अथ दशम अध्याय ॥

धनहीनो न हीनश्च धनिकः स सुनिश्चयः।
विद्यारत्नेन यो न हीनः यः स हीनः सर्ववस्तुषु॥

निर्धन व्यक्ति हीन अर्थात छोटा नहीं है, धनवान वही है जो अपने निश्चय पर दृढ़ है, परंतु विद्या रूपी रत्न से जो हीन है, वह सभी चीजों से हीन है॥1॥

किसी भी कार्य को सम्पन्न करने के लिए विद्या बहुत जरूरी है। उसी के द्वारा वह धन प्राप्त करता है। विद्या ही सच्चा धन है।

दृष्टिपूतं न्यसेत् पादं वस्त्रपूतं पिबेज्जलम्।
शास्त्रपूतं वदेद् वाक्यं मनः पूतं समाचरेत्॥

अच्छी तरह देखकर पैर रखना चाहिए, कपड़े से छानकर पानी पीना चाहिए, शास्त्र से (व्याकरण से) शुद्ध करके वचन बोलना चाहिए और मन में विचार करके कार्य करना चाहिए॥2॥

देख-भालकर चलने, शुद्ध जल तथा शुद्ध वचनों का प्रयोग करने और मन से भली प्रकार से सोच-समझकर कार्य करने की बात यहां कही गई है।

सुखार्थी चेत् त्यजेद् विद्यां विद्यार्थी चेत् त्यजेत् सुखम।
सुखार्थिनः कुतो विद्या विद्यार्थिनः कुतः सुखम्॥

विद्यार्थी को यदि सुख की इच्छा है और वह परिश्रम करना नहीं चाहता तो उसे विद्या प्राप्त करने की इच्छा का त्याग कर देना चाहिए। यदि वह विद्या चाहता है तो उसे सुख-सुविधाओं का त्याग करना होगा क्योंकि सुख चाहने वाला विद्या प्राप्त नहीं कर सकता। दूसरी ओर विद्या प्राप्त करने वालों को आराम नहीं मिल सकता॥3॥

आचार्य चाणक्य ने उक्त श्लोक के माध्यम से कहा है कि सुख और विद्याप्राप्ति में वैसे ही संधि असंभव है जैसे-जैसे प्रकाश और अंधकार का मेल। एक के रहते दूसरे का अस्तित्व खोया रहता है।

कवयः किं न पश्यन्ति किं न कुर्वन्ति योषितः।
मद्यपाः किं न जल्पन्ति किं न भक्ष्यन्ति वायसाः॥

कवि लोग क्या नहीं देखते? स्त्रियां क्या नहीं कर सकतीं? मदिरा पीने वाले क्या-क्या नहीं बकते? कौवे क्या-क्या नहीं खाते?॥4॥

'जहां न पहुंचे रवि, वहां पहुंचे कवि' यह उक्ति बहुत प्रसिद्ध है कि जहां सूर्य की रश्मियां भी नहीं पहुंच पातीं, वहां कवि की कल्पना पहुंच जाती है।

स्त्री जब अपनी पर आती है तो वह कुछ भी कर सकती है। शराबी जब नशे में हो जाते हैं तो कुछ उल्टा-सीधा बकने लगते हैं और कौवे न खाने योग्य खाद्य पदार्थ भी खा लेते हैं।

भाव यह है कि विद्वान व्यक्ति सभी कार्य सोच-समझकर करता है और नीच व्यक्ति अपने विवेक से कार्य नहीं करता।

रंकं करोति राजानं राजानं रंकमेव च।
धनिनं निर्धनं चैव निर्धनं धनिनं विधिः॥

भाग्य की शक्ति अत्यंत प्रबल है। वह पल में निर्धन को राजा और राजा को निर्धन बना देती है। वह धनी को निर्धन और निर्धन को धनी बना देती है॥5॥

भाग्य से जीतना असंभव है। भाग्य कब क्या कर दे, कोई नहीं जानता। इसकी लीला अपरम्पार है। इस पर किसी का वश नहीं चलता।

लुब्धानां याचकः शत्रुर्मूर्खाणां बोधकः रिपुः।
जारस्त्रीणां पतिः शत्रुश्चोराणां चंद्रमा रिपुः॥

लोभियों का शत्रु भिखारी है, मूर्खों का शत्रु ज्ञानी है, व्यभिचारिणी स्त्री का शत्रु उसका पति है और चोरों का शत्रु चंद्रमा है॥6॥

भाव यह है कि लोभी, मूर्ख, कुल्टा स्त्री और चोर के कार्यों में जिनके द्वारा विघ्न पड़ता है, वे सभी उनके शत्रु होते हैं क्योंकि ये सब अपनी आदतों को किसी के द्वारा समझाए जाने पर भी नहीं बदल सकते। सच ही कहा गया है कि मूर्खों को कभी उपदेश नहीं देना चाहिए। अतः मूर्ख से शिक्षा और लोभी से कुछ मांगने की भूल कभी नहीं करनी चाहिए।

येषां न विद्या न तपो न दानम्, न चाऽपि शीलं न गुणो न धर्मः।
ते मर्त्यलोके भुवि भारभूता मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति॥

जिसके पास न विद्या है, न तप है, न दान है और न धर्म है, वह इस मृत्युलोक में पृथ्वी पर भार स्वरूप मनुष्य रूपी मृगों के समान घूम रहा है। वास्तव में ऐसे व्यक्ति का जीवन व्यर्थ है। वह समाज के किसी काम का नहीं है॥7॥

आचार्य चाणक्य के प्रस्तुत श्लोक से यह संदेश मिलता है कि मनुष्य योनि में जन्म लेकर मनुष्य को विद्या ग्रहण करनी चाहिए, साधना और दान की प्रवृत्ति अपनानी चाहिए, सदाचार की भावना का पालन करना चाहिए अन्यथा उनमें और पशु में अंतर ही क्या है।

अन्तःसारविहीनानामुपदेशो न जायते।
मलयाचलसंसर्गात् न वेणुश्चन्दनायते॥

शून्य हृदय पर कोई उपदेश लागू नहीं होता। जैसे मलयाचल के संबंध से बांस चंदन का वृक्ष नहीं बनता॥8॥

आचार्य चाणक्य के अनुसार जिस मनुष्य में भावना नहीं, योग्यता नहीं वह किसी भी प्रकार के उपदेश से लाभ नहीं उठा सकता।

जिस प्रकार मलयगिरि पर उगने से ही बांस चंदन के वृक्ष की भांति सुगंध से परिपूर्ण नहीं हो जाता।

यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा शास्त्रं तस्य करोति किम्।
लोचनाभ्यां विहीनस्य दर्पणः किं करिष्यति॥

जिनको स्वयं बुद्धि नहीं है, शास्त्र उनके लिए क्या कर सकता है? जैसे अंधे के लिए दर्पण का क्या महत्त्व है?॥9॥

भाव यह है कि जो पूरी तरह मूर्ख है, उनके लिए शास्त्र भी कुछ नहीं कर सकते।

दुर्जनं सज्जनं कर्तुमुपायो न हि भूतले।
अपानं शतधा धौतं न श्रेष्ठमिन्द्रियं भवेत्॥

इस पृथ्वी पर दुर्जन व्यक्ति को सज्जन बनाने का कोई उपाय नहीं है, जैसे सैकड़ों बार धोने के उपरान्त भी गुदा-स्थान शुद्ध इन्द्री नहीं बन सकता॥ 10॥

मल त्यागने का स्थान सैकड़ों बार धोने के उपरान्त भी अशुद्ध स्थान ही माना जाता है। इस प्रकार दुर्जन व्यक्ति को कितना भी अच्छा बनाने का प्रयास किया जाए, वह सज्जन नहीं बन पाता।

आत्मद्वेषाद् भवेन्मृत्युः परद्वेषाद् धनक्षयः।
राजद्वेषाद् भवेन्नाशो ब्रह्मद्वेषात्कुलक्षयः।।

अपनी आत्मा से द्वेष करने से मनुष्य की मृत्यु हो जाती है—दूसरों से अर्थात शत्रु से द्वेष के कारण धन का नाश और राजा से द्वेष करने से अपना सर्वनाश हो जाता है, किंतु ब्राह्मण से द्वेष करने से सम्पूर्ण कुल का ही नाश हो जाता है।।11।।

भाव यह है कि विद्वानों, राजा, ब्राह्मण और जीवन में साथ-साथ चलने वाले परिजनों का विरोध न करके उनका स्नेह और सौहार्द्र ही प्राप्त करना चाहिए।

वरं वनं व्याघगजेन्द्रसेवितं, द्रुमालयः पत्रफलाम्बु सेवनम्।
तृणेषु शय्या शतजीर्णवल्कलं, न बन्धुमध्ये धनहीनजीवनम्।।

बड़े-बड़े हाथियों और बाघों वाले वन में वृक्ष का कोट रूपी घर अच्छा है, पके फलों को खाना, जल का पीना, तिनकों पर सोना, पेड़ों की छाल पहनना उत्तम है, परंतु अपने भाई-बंधुओं के मध्य निर्धन होकर जीना अच्छा नहीं।।12।।

यहां निर्धनता के अभिशाप और धन के महत्त्व को प्रकट करते हुए चाणक्य कहते हैं कि निर्धनता हर तरह से खराब है।

विप्रो वृक्षस्तस्य मूलं च संध्या, वेदाः शाखा धर्मकर्माणि पत्रम्।
तस्मान्मूलं यत्नतो रक्षणीयं, छिन्ने मूले नैव शाखा न पत्रम्।।

ब्राह्मण वृक्ष है, संध्या उसकी जड़ है, वेद शाखाएं हैं, धर्म तथा कर्म पत्ते हैं इसलिए ब्राह्मण का कर्तव्य है कि संध्या की रक्षा करें क्योंकि जड़ के कट जाने से पेड़ के पत्ते व शाखाएं नहीं रहतीं।।13।।

भाव यह है कि ब्राह्मण को अपनी साधना तथा अध्यवसाय नहीं त्यागना चाहिए। जो तपस्वी और विद्वान है, वही ब्राह्मण है।

माता च कमलादेवी पिता देवो जनार्दनः।
बांधवाः विष्णुभक्ताश्च स्वदेशो भुवनत्रयम्॥

जिसकी माता लक्ष्मी है, पिता विष्णु देव हैं, भाई-बंधु विष्णु के भक्त हैं, उनके लिए तीनों लोक ही अपने देश हैं॥14॥

भक्त-जनों के लिए तीनों लोक उनके अपने घर के समान ही हैं। विष्णु तथा लक्ष्मी उनके माता-पिता हैं। जिस पर विष्णु-लक्ष्मी की कृपा है और जो उनके भक्तों के मध्य निवास करता है, उसके लिए तीनों लोक उसके पास हैं।

एकवृक्षसमारूढा नानावर्णा विहंगमाः।
प्रभाते दिक्षुं दशसु का तत्र परिवेदना॥

अनेक रंग और रूपों वाले पक्षी सायं काल एक वृक्ष पर आकर बैठते हैं और प्रातः काल दसों दिशाओं में उड़ जाते हैं। ऐसे ही बंधु-बांधव एक परिवार में मिलते हैं और बिछुड़ जाते हैं। इस विषय में शोक कैसा ?॥15॥

आचार्य चाणक्य ने इस श्लोक के द्वारा कहा है कि जो भी जड़-चेतन इस संसार में जन्मा है, उसकी मृत्यु निश्चित है, जब मृत्यु एक शाश्वत सत्य है, फिर इसके लिए शोक-संताप कैसा ? प्रलाप कैसा ? प्रकृति के जन्म-मृत्यु से चिंतित होने से कोई लाभ नहीं।

बुद्धिर्यस्य बलं तस्य निर्बुद्धेश्च कुतो बलम्।
वने सिंहो मदोन्मत्तः शशकेन निपातितः॥

जो बुद्धिमान है, वही बलवान है, बुद्धिहीन के पास शक्ति

नहीं होती। जैसे जंगल में सबसे अधिक बलवान होने पर भी सिंह मतवाला होकर खरगोश के द्वारा मारा जाता है।।16।।

'पंचतंत्र' में यह कथा आई है, जिसमें एक खरगोश अपनी चतुराई से सिंह की परछाई कुएं में दिखाकर, परछाई को उसका प्रतिद्वन्द्वी बता देता है। सिंह कुएं में उस पर छलांग लगा देता है और कुएं में डूबकर मर जाता है, अर्थात बुद्धि बल से बड़ी है। बुद्धि के द्वारा ताकतवर मनुष्य को भी पराजित किया जा सकता है।

का चिंता मम जीवने यदि हरिर्विश्वम्भरो गीयते,
नो चेदर्भकजीवनाय जननीस्तन्यं कथं निर्मयेत्।
इत्यालोच्य मुहुर्मुहुर्यदुपते लक्ष्मीपते केवलं,
त्वत्पादाम्बुजसेवनेन सततं कालो मया नीयते।।

यदि भगवान जगत के पालनकर्ता हैं तो हमें जीने की क्या चिन्ता है? यदि वे रक्षक न होते तो माता के स्तनों से दूध क्यों निकलता? यही बार-बार सोचकर हे लक्ष्मीपति! अर्थात विष्णु! मैं आपके चरण-कमल में सेवा हेतु समय व्यतीत करना चाहता हूं।।17।।

विष्णु की उपासना के साथ-साथ कर्महीन होकर बैठ जाने की मंशा यहां नहीं है। भगवान उसी के सहायक होते हैं जो कर्म करता है।

गीर्वाणवाणीषु विशिष्टबुद्धिस्तथापि भाषान्तरलोलुपोऽहम्।
यथा सुराणाममृते स्थितेऽपि स्वर्गांगनानामधरासवे रुचिः।।

यद्यपि मेरी बुद्धि देववाणी (संस्कृत) में श्रेष्ठ है, तब भी मैं दूसरी भाषा का लालची हूं। जैसे अमृत पीने पर भी देवताओं की इच्छा स्वर्ग की अप्सराओं के ओष्ट रूपी मद्य को पीने की बनी रहती है।।18।।

भाव यह है कि भले ही हम किसी श्रेष्ठ भाषा में पारंगत हों, पर दूसरी अन्य भाषाओं को जानने और समझने के लिए हमें सदा प्रयत्नशील रहना चाहिए। इससे ज्ञान बढ़ता है।

अन्नाद् दशगुणं पिष्टं पिष्टाद् दशगुणं पयः।
पयसोऽष्टगुणं मांसं मांसाद् दशगुणं घृतम्।।

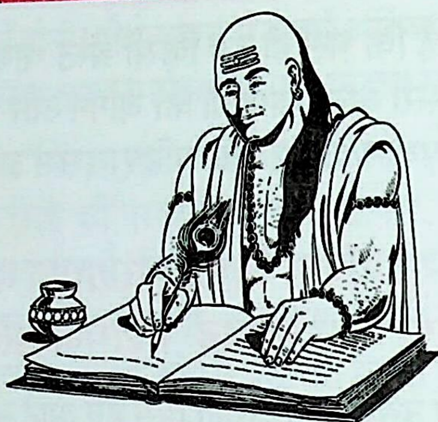
अन्न की अपेक्षा उसके चूर्ण अर्थात पिसे हुए आटे में दस गुना अधिक शक्ति होती है। दूध में आटे से भी दस गुना अधिक शक्ति होती है। मांस में दूध से भी आठ गुना अधिक शक्ति होती है और घी में मांस से भी दस गुना अधिक बल है।।19।।

अतः मांस खाने वालों को घृत के सेवन का अभ्यास डालना चाहिए। आज दालें तथा सूखे मेवे भी मांस की पूर्ति कर सकने में समर्थ हैं। उनमें भी प्रोटीन काफी मात्रा में मिलता है।

शाकेन रोगा वर्द्धन्ते पयसा वर्द्धते तनुः।
घृतेन वर्धते वीर्यं मांसान्मांसं प्रवर्धते।।

साग खाने से रोग बढ़ते हैं, दूध से शरीर बलवान होता है, घी से वीर्य (शक्ति) बढ़ता है और मांस खाने से, मांस ही बढ़ता है।।20।।

अतः बल-बुद्धि और शक्ति के लिए घी-दूध का सेवन ही उत्तम है, मांस नहीं। साग-सब्जी से रोग तभी बढ़ते हैं, जब उन्हें अच्छी प्रकार से धोकर शुद्ध नहीं कर लिया जाता। शुद्ध न करने पर उसमें बाह्य कीटाणु रह जाते हैं, जो रोग बढ़ाते हैं।



॥ अथ एकादश अध्याय ॥

दातृत्वं प्रियवक्तृत्वं धीरत्वमुचितज्ञता।
अभ्यासेन न लभ्यन्ते चत्वारः सहजा गुनाः॥

दान देने का स्वभाव, मधुर वाणी, धैर्य और उचित की पहचान, ये चार बातें अभ्यास से नहीं आतीं, ये मनुष्य के स्वाभाविक गुण हैं। ईश्वर के द्वारा ही ये गुण प्राप्त होते हैं। जो व्यक्ति इन गुणों का उपयोग नहीं करता, वह ईश्वर के द्वारा दिए गए वरदान की उपेक्षा ही करता है और दुर्गुणों को अपनाकर घोर कष्ट भोगता है॥ 1॥

आचार्य चाणक्य ने प्रस्तुत श्लोक के माध्यम से बताया है कि निरंतर अभ्यास से मनुष्य अनेक गुणों को प्राप्त कर सकता है, परंतु अभ्यास से सबकुछ प्राप्त नहीं हो सकता। कुछ गुण ऐसे होते हैं जो स्वाभाविक होते हैं। उनका वर्णन श्लोक में किया गया है।

आत्मवर्गं परित्यज्य परवर्गं समाश्रेयत्।
स्वयमेव लयं याति यथा राजाऽन्यधर्मतः॥

जो अपने वर्ग को छोड़कर दूसरे के वर्ग का आश्रय ग्रहण करता है, वह स्वयं ही नष्ट हों जाता है, जैसे राजा अधर्म के द्वारा नष्ट

हो जाता है। उसके पाप कर्म उसे नष्ट कर डालते हैं।।2।।

वस्तुतः जो व्यक्ति अपनों का न हुआ, वह दूसरों का कैसे हो सकता है ? अपनों को त्यागना ही अधर्म के मार्ग पर चलना है, जिससे अन्ततः हानि ही होती है।

हस्ती स्थूलतनुः स चांकुशवशः किं हस्तिमात्रोऽङ्कुशः
दीपे प्रज्वलिते प्रणश्यति तमः किं दीपमात्रं तमः।
वज्रेणापि हताः पतन्ति गिरयः किं वज्रमात्रं गिरिस्
तेजो यस्य विराजते सः बलवान् स्थूलेषु कः प्रत्ययः।।

हाथी मोटे शरीर वाला है, परंतु अंकुश से वश में रहता है। क्या अंकुश हाथी के बराबर है? दीपक के जलने पर अंधकार नष्ट हो जाता है। क्या दीपक अंधकार के बराबर है? वज्र से बड़े-बड़े पर्वत शिखर टूटकर गिर जाते हैं। क्या वज्र पर्वतों के समान है? सत्यता यह है कि जिसका तेज चमकता रहता है, वही बलवान है। मोटेपन से बल का अहसास नहीं होता।।3।।

भाव यह है कि किसी के आकार को देखकर उसकी शक्ति का अनुमान नहीं लगा लेना चाहिए। शक्ति साहस में होती है।

कलौ दशसहस्त्रेषु हरिस्त्यजति मेदिनीम्।
तदर्द्धं जाह्नवीतोयं तदर्द्धं ग्रामदेवता।।

कलियुग के दस हजार वर्ष बीतने पर श्रीविष्णु (पालनकर्ता) इस पृथ्वी को छोड़ देते हैं, उसके आधा बीतने पर गंगा का जल समाप्त हो जाता है और उसके आधा बीतने पर ग्राम के देवता भी पृथ्वी को छोड़ देते हैं।।4।।

भाव यह है कि कलियुग के दस हजार वर्ष बीतने के बाद इस धरती से जीवन-यापन के सभी समुचित साधन नष्ट हो

जाएंगे और दस हजार के आधे अर्थात् अगले पांच हजार वर्ष बीतने पर पापों का नाश करके मन को पवित्र करने वाली गंगा का जल भी समाप्त हो जाएगा और फिर उसके आधे अर्थात अगले ढाई हजार साल बीतने पर धरती की कृषि-भूमि भी नष्ट हो जाएगी। इसका अर्थ यह है कि कलियुग के साढ़े सत्रह हजार वर्ष बीत जाने पर पुनः प्रलय होगी और यह धरती जल में डूब जाएगी।

गृहाऽऽसक्तस्य नो विद्या नो दया मांसभोजिनः।
द्रव्यलुब्धस्य नो सत्यं स्त्रैणस्य न पवित्रता॥

घर-गृहस्थी में आसक्त व्यक्ति को विद्या नहीं आती। मांस खाने वाले को दया नहीं आती। धन के लालची को सच बोलना नहीं आता और स्त्री में आसक्त कामुक व्यक्ति में पक्त्रिता नहीं होती॥5॥

विद्या प्राप्ति के लिए गृह-त्याग करके गुरु के पास जाना जरूरी है। मांसाहारी व्यक्ति दया भूल जाता है। लालची व्यक्ति अपने स्वार्थ के लिए बार-बार झूठ का सहारा लेता है और कामुक व्यक्ति सदा स्त्री-सम्भोग में लिप्त रहता है, तब वह पवित्र कैसे हो सकता है।

न दुर्जनः साधुदशामुपैति बहुप्रकारैरपि शिक्ष्यमाणः।
आमूलसिक्तः पयसा घृतेन न निम्बवृक्षो मधुरत्वमेति॥

जिस प्रकार नीम के वृक्ष की जड़ को दूध और घी से सींचने के उपरांत भी वह अपनी कड़वाहट छोड़कर मृदुल नहीं हो जाता, ठीक इसी के अनुरूप दुष्ट प्रवृत्तियों वाले मनुष्यों पर सदुपदेशों का कोई भी असर नहीं होता॥6॥

कहने का आशय यह है कि दुष्ट मनुष्य की आदत बन चुके अवगुणों को बदला नहीं जा सकता।

अंतर्गतमलो दुष्टस्तीर्थस्नानशतैरपि।
न शुध्यति यथा भाण्डं सुराया दाहितं च सत्॥

जिस प्रकार शराब वाला पात्र अग्नि में तपाए जाने पर भी शुद्ध नहीं हो सकता, उसी प्रकार जिस मनुष्य के हृदय में पाप और कुटिलता भरी होती है, सैकड़ों तीर्थ स्थानों पर स्नान करने से भी ऐसे मनुष्य पवित्र नहीं हो सकते॥ 7॥

भाव यही है कि जब तक मनुष्य अपने मन की मलिनता अर्थात पाप में प्रवृत्त होने की भावना का त्याग नहीं करता, तब तक उसके तीर्थ–स्नान करने से भी कोई लाभ नहीं है। वह पापी ही बना रहता है। वह सैकड़ों तीर्थ–स्नानों पर स्नान करने से भी पवित्र नहीं हो पाता।

न वेत्ति यो यस्यगुणप्रकर्षं स तं सदा निन्दति नाऽत्र चित्रम्।
यथा किराती करिकुम्भजाता मुक्तां परित्यज्य बिभर्ति गुंजाः॥

इसमें कोई आश्चर्य नहीं है कि जो जिसके गुणों के महत्त्व को नहीं जानता, वह उसकी सदैव निन्दा करता है। जैसे जंगली भीलनी हाथी के गंडस्थल से प्राप्त मोती को छोड़कर गुंजाफल की माला को पहनती है॥8॥

यहां आचार्य चाणक्य के कहने का आशय यह है कि पारखी ही किसी वस्तु के महत्त्व को समझ सकता है।

जैसे जंगल में रहने वाली भीलनी हाथी के मस्तक से प्राप्त होने वाले बहुमूल्य काले मोती को छोड़कर लाल रत्तियों की माला पहनती है क्योंकि वह उस मोती के महत्त्व को नहीं जानती।

इसी प्रकार हर कोई गुणों को नहीं जान पाता। जौहरी ही रत्नों की पहचान करता है।

यस्तु संवत्सरं पूर्ण नित्यं मौनेन भुंजति।
युगकोटिसहस्त्रं तुः स्वर्गलोके महीयते।।

जो कोई प्रतिदिन पूरे संवत्-भर मौन रहकर भोजन करते हैं, वे हजारों-करोड़ों युगों तक स्वर्ग में पूजे जाते हैं।।9।।

भाव यह है कि जो व्यक्ति संतोष के साथ जो मिले उसी पर संतुष्ट रहता है, उसे पृथ्वी पर ही स्वर्ग का सुख प्राप्त होता है। उसे न तो कोई दुख होता है और न ही कोई कष्ट। आचार्य चाणक्य का कहने का तात्पर्य यह है कि भोजन प्रसन्नमुख तथा शांतभाव से करना चाहिए।

कामं क्रोधं तथा लोभं स्वादं श्रृंगारकौतुके।
अतिनिद्राऽतिसेवे च विद्यार्थी ह्यष्ट वर्जयेत्।।

काम (व्यभिचार), क्रोध (अभीष्ट की प्राप्ति न होने पर आपे से बाहर होना), लालच (धन-प्राप्ति की लालसा), स्वाद (जिह्वा को प्रिय लगने वाले पदार्थों का सेवन) श्रृंगार (सजना-धजना), खेल और अत्यधिक सेवा (दूसरों की चाकरी) आदि दुर्गुण विद्यार्थी के लिए वर्जित हैं। विद्यार्थी को इन आठों दुर्गुणों का सर्वथा त्याग कर देना चाहिए।। 10।।

कहने का आशय यह है कि ये अवगुण विद्यार्थी को कभी भी अपने लक्ष्य तक नहीं पहुंचने देते, अर्थात विद्यार्थी को चाहिए कि वे इन आठों प्रकार के अवगुणों का पूरी तरह त्याग करें।

अकृष्टफलमूलेन वनवासरतः सदा।
कुरुतेऽहरहः श्राद्धमृषिर्विप्रः स उच्यते।।

बिना जोते हुए स्थान के फल, मूल खाने वाला, अर्थात ईश्वर की कृपा से प्राप्त हर प्रकार के भोजन से संतुष्ट होने वाला,

निरंतर वन से प्रेम रखने वाला और प्रतिदिन श्राद्ध करने वाला ब्राह्मण ऋषि कहलाता है।।11।।

भाव यह है कि जो संतुष्ट होकर भोजन करता है, गृहस्थी के मोह-बंधन में जो नहीं बंधा हुआ है और जो प्रतिदिन अपने पूर्वजों को याद करता है, वह ऋषि-मुनियों के ही समान तपस्वी है।

एकाहारेण संतुष्टः षट्कर्मनिरतः सदा।
ऋतुकालाभिगामी च स विप्रो द्विज उच्यते।।

जो व्यक्ति एक बार के भोजन से संतुष्ट हो जाता है, छः कर्मों (यज्ञ करना, यज्ञ कराना, पढ़ना, पढ़ाना, दान देना, दान लेना) में लगा रहता है और अपनी स्त्री से ऋतुकाल (मासिक धर्म) के बाद ही प्रसंग करता है, वही ब्राह्मण कहलाने का सच्चा अधिकारी है।।12।।

आचार्य चाणक्य के उपरोक्त श्लोक के संदर्भ में ऋतुकालगामी होने की व्याख्या इस प्रकार है—स्त्रियों का स्वाभाविक ऋतुकाल सोलह रात्रि का है। उसमें से चार रात्रि अर्थात रजोदर्शन से लेकर चार दिन निदिंत हैं। ग्यारहवीं और तेरहवीं रात्रि भी निंदित हैं। शेष दस रात्रियां ऋतु दान में श्रेष्ठ हैं। जो संतान प्राप्ति के लिए ऐसी दस रात्रियों में समागम करता है वह ऋतुकालगामी कहलाता है।

लौकिके कर्मणि रतः पशूनां परिपालकः।
वाणिज्यकृषिकर्ता यः स विप्रो वैश्य उच्यते।।

जो ब्राह्मण दुनियादारी के कामों में लगा रहता है, पशुओं का पालन करने वाला और व्यापार तथा खेती करता है, वह वैश्य (वणिक) कहलाता है।।13।।

यहां आचार्य चाणक्य के कहने का आशय यह है कि जन्म से कोई ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र नहीं होता।

लाक्षादि-तैल-नीलानां कुसुम्भ-मधु-सर्पिषाम्।
विक्रेता मद्यमांसानां स विप्रः शूद्र उच्यते।।

लाख आदि, तेल, नील, फूल, शहद, घी, मदिरा (शराब) और मांस आदि का व्यापार करने वाला ब्राह्मण शूद्र कहलाता है।।14।।

आचार्य चाणक्य ने प्रस्तुत श्लोक के माध्यम से पूर्व के श्लोक समान ही ब्राह्मण के कर्म से हटकर अन्य कार्य करने का निषेध किया है। तेल, नील, कुमकुम, मधु, घी, मद्य, मांस बेचने का यदि वह कार्य करता है तो वह शूद्र कहलाता है। वैश्य वर्ण में जन्म लेकर यदि कोई उक्त पदार्थों में से कुछ का व्यापार करता हो तो भले ही वैश्य कहलाए, पर ब्राह्मण यदि इनका व्यापार करे तो शूद्र कहलाता है।

परकार्यविहन्ता च दाम्भिकः स्वार्थसाधकः।
छली द्वेषी मृदः क्रूरो विप्रो मार्जार उच्यते।।

दूसरे के कार्य में विघ्न डालकर नष्ट करने वाला, घमण्डी, स्वार्थी, कपटी, झगड़ालू, ऊपर से कोमल और भीतर से निष्ठुर ब्राह्मण बिलाऊ (नर बिलाव) कहलाता है, अर्थात वह पशु है, नीच है।।15।।

आचार्य चाणक्य ने प्रस्तुत श्लोक में भी ब्राह्मण को अपने वास्तविक गुणों को अपनाए रखने की बात कही है।

अपने ब्राह्मण गुणों से अलग हटकर जो उपरोक्त छल-प्रपंच के कार्य में लिप्त हो जाता है वह पशु समान हो जाता है।

वापी - कूप - तडागानामाराम - सुर - वेश्मनाम्।
उच्छेदने निराऽऽशंकः स विप्रो म्लेच्छ उच्यते।।

बावड़ी, कुआं, तालाब, बगीचा और देव-मन्दिर को

निर्भय होकर तोड़ने वाला ब्राह्मण म्लेच्छ (नीच) कहलाता है।। 16।।

आचार्य चाणक्य ने प्रस्तुत श्लोक के द्वारा भी ब्राह्मण कर्तव्य का बोध कराया है। अपने वास्तविक कर्त्तव्य से विमुख होकर जो ब्राह्मण आक्रांताओं (हमलावरों) जैसा तोड़-फोड़ का कार्य करता है, वह ब्राह्मण न रहकर स्वयं भी म्लेच्छ हो जाता है।

देवद्रव्यं गुरुद्रव्यं परदाराऽभिमर्शनम्।
निर्वाहः सर्वभूतेषु विप्रश्चाण्डाल उच्यते।।

देवता का धन, गुरु का धन, दूसरे की स्त्री के साथ प्रसंग (संभोग) करने वाला और सभी जीवों में निर्वाह करने अर्थात सबका अन्न खाने वाला ब्राह्मण चांडाल कहलाता है।। 17।।

इन दिनों पूजा-स्थलों की आय को भी कुछ लोग हड़प कर जाते हैं। वे किसी चाण्डाल से कम नहीं होते।

देयं भोज्यधनं सदा सुकृतिभिर्नो संतिव्यं कदा,
श्रीकर्णस्य बलेश्च विक्रमपतेरद्यापि कीर्तिः स्थिता।
अस्माकं मधु दानभोगरहितं नष्टं चिरात् संचितम्,
निर्वाणादिति पाणिपादयुगलं धर्षन्त्यहो मक्षिकाः।।

भाग्यशाली पुण्यात्मा लोगों को खाद्य-सामग्री और धन-धान्य आदि का संग्रह न करके, उसे अच्छी प्रकार से दान करना चाहिए। दान देने से कर्ण, दैत्यराज बलि और विक्रमादित्य जैसे राजाओं की कीर्ति आज तक बनी हुई है। इसके विपरीत शहद का संग्रह करने वाली मधुमक्खियां जब अपने द्वारा संग्रहीत मधु को किसी कारण से नष्ट हुआ देखती हैं तो वे अपने पैरों को रगड़ते हुए कहती हैं कि हमने न तो अपने मधु का उपयोग किया और न किसी को दिया ही।। 18।।

यहां पैरों के रगड़ने से तात्पर्य 'हाथ मलने' से है, अर्थात पश्चाताप करने से है। बुद्धिमान व्यक्ति खाद्य-सामग्री और धन-धान्य का संग्रह अपने लिए नहीं, दूसरों के लिए अर्थात परोपकार के लिए करते हैं, जरूरतमंदों को देने के लिए करते हैं और अपनी इस परोपकारी भावना से संसार में अपना नाम अमर कर जाते हैं।

इस प्रकार यहां आचार्य चाणक्य ने दान के महत्त्व का प्रतिपादन किया है।



॥अथ द्वादश अध्याय॥

सानन्दं सदनं सुताश्च सुधयः कान्ता प्रियालापिनी,
सुधनं सन्मित्रं स्वयोषिति रतिः स्वाऽऽज्ञापराः सेवकाः
आतिथ्यं शिवपूजनं प्रतिदिनं मिष्टान्नपानं गृहे,
साधोः संगमुपासते च सततं धन्यो गृहस्थाश्रमः॥

घर आनन्द से युक्त हो, संतान बुद्धिमान हो, पत्नी मधुर वचन बोलने वाली हो, इच्छापूर्ति के लायक धन हो, पत्नी के प्रति प्रेम भाव हो, आज्ञाकारी सेवक हो, अतिथि का सत्कार और श्री शिव का पूजन प्रतिदिन हो, घर में मिष्ठान व शीतल जल मिला करे और महात्माओं का सत्संग प्रतिदिन मिला करे तो ऐसा गृहस्थाश्रम सभी आश्रमों से अधिक धन्य है। ऐसे घर का स्वामी अत्यंत सुखी और सौभाग्यशाली होता है॥1॥

जहां सदा आनंद की तरंगें उठती हैं, पुत्र और पुत्रियां बुद्धिमान और बुद्धिमती, पत्नी मधुरभाषिणी, परिश्रम से कमाया विपुल धन, उत्तम मित्र, पत्नी से अनुराग, नौकर से अच्छी सेवा मिलती हो।

अतिथि का आदर, परमात्मा की उपासना, श्रेष्ठ पुरुषों का सत्संग होता रहे, ऐसा घर धन्य और प्रशंसनीय है।

आर्तेषु विप्रेषु दयान्वितश्च यत् श्रद्धया स्वल्पमुपैति दानम्।
अन्ततपारं समुपैति राजन् यद्दीयते तन्न लभेद् द्विजेभ्यः॥

जो व्यक्ति दुःखी ब्राह्मणों पर दयामय होकर अपने मन से दान देता है, वह अनन्त होता है। हे राजन! ब्राह्मणों को जितना दान दिया जाता है, वह उतने से कई गुना अधिक होकर वापस मिलता है॥2॥

भाव यह है कि यजमान को उदारतापूर्वक दान देना चाहिए।

दाक्षिण्यं स्वजने दया परिजने शठ्यं सदा दुर्जने,
प्रीतिः साधुजने स्मयः खलजने विद्वज्जने चार्जवम्
शौर्यं शत्रुजने क्षमा गुरुजने नारीजने धृष्टता,
इत्थं ये पुरुषाः कलासु कुशलास्तेष्वेव लोकस्थितः॥

जो पुरुष अपने वर्ग में उदारता, दूसरे के वर्ग पर दया, दुर्जनों के वर्ग में दुष्टता, उत्तम पुरुषों के वर्ग में प्रेम, दुष्टों से सावधानी, पंडित वर्ग में कोमलता, शत्रुओं में वीरता, अपने बुजुर्गों के बीच में सहनशक्ति, स्त्री वर्ग में धूर्तता आदि कलाओं में चतुर हैं, ऐसे ही लोगों से इस संसार की मर्यादा बंधी हुई है॥ 3॥

स्थान और समय के अनुसार जो कार्य करता है, वह चतुर है।

हस्तौ दानविवर्जितौ श्रुतिपुटौ सारस्वतद्रोहिणौ,
नेत्रे साधुविलोकनेन रहिते पादौ न तीर्थं गतौ।
अन्यायार्जितवित्तपूर्णमुदरं गर्वेण तुंगं शिरो,
रे रे जम्बुक! मुंच मुंच सहसा नीचं सुनिन्द्यं वपुः॥

दोनों हाथ दान देने से रहित, दोनों काल वेदशास्त्रों को

सुनने के विरोधी, दोनों नेत्र महात्माओं के दर्शन से वंचित, दोनों पैर तीर्थयात्रा से दूर और केवल अन्याय के द्वारा कमाए धन से पेट भरकर अहंकार करने वाले, हे रंगे सियार! निन्दा के योग्य इस नीच शरीर को छोड़ दे।।4।।

जो व्यक्ति दया, दान, धर्म से वंचित होकर गलत तरीके से कमाए धन पर अहंकार करके इतराता है, वह नीच है।

ऐसे व्यक्ति को अपने शरीर से मोह नहीं करना चाहिए। भाव यह है कि मनुष्य को इस शरीर से अच्छे कर्म करने चाहिए।

येषां श्रीमद्यशोदासुत - पद - कमले नास्ति भक्तिर्नराणाम्,
येषामाभीरकन्या प्रियगुणकथने नानुरक्ता रसज्ञा।
तेषां श्रीकृष्णलीला ललितरसकथा सादरौ नैव कर्णौ,
धिक्तान् धिक्तान् धिगेतान्, कथयति सततं कीर्तनस्था मृदंग।।

जिनकी भक्ति यशोदा के पुत्र (श्रीकृष्ण) के चरणकमलों में नहीं है, जिनकी जिह्वा अहीरों की कन्याओं (गोपियों) के प्रिय (श्री गोविन्द) के गुणगान नहीं करती, जिनके कान परमानन्द स्वरूप श्रीकृष्णचन्द्र की लीला तथा मधुर रसमयी कथा को आदरपूर्वक सुनने में नहीं हैं, ऐसे लोगों को मृदंग की थाप, धिक्कार है, धिक्कार है (धिक्तान्-धक्तान्) कहती है।।5।।

प्रस्तुत श्लोक में आचार्य चाणक्य ने मृदंग वाद्य की ध्वनि से बहुत अच्छी उपमा दी है। मृदंग से आवाज निकलती है 'धिक्तान्' इसका संस्कृत में अर्थ है 'उन्हें धिक्कार है'। इसके आगे कवि कल्पना करता है कि जिन लोगों का भगवान श्रीकृष्ण के चरणकमलों में अनुराग नहीं, जिनकी जिह्वा को श्री राधाजी और गोपियों के गुणगान में आनंद नहीं आता, जिनके कान श्रीकृष्ण की सुंदर कथा को सुनने के लिए सदा उत्सुक नहीं रहते, मृदंग भी उन्हें 'धिक्कार है, धिक्कार है' कहता है। वस्तुतः जो

व्यक्ति जीवन में प्रभु का गुणगान नहीं करता, उसे धिक्कार है, उसका जीवन व्यर्थ है।

पत्रं नैव यदा करीलविटपे दोषो वसन्तस्य किं?
नोलूकोऽप्यवलोकते यदि दिवा सूर्यस्य किं दूषणम्।
वर्षा नैव पतन्ति चातकमुखे मेघस्य किं दूषणम्?
यत्पूर्वं विधिना ललाटलिखितं तन्मार्जितुं कः क्षमः।।

वसंत ऋतु में यदि करील के वृक्ष पर पत्ते नहीं आते तो इसमें वसंत का क्या दोष है? सूर्य सबको प्रकाश देता है, पर यदि दिन में उल्लू को दिखाई नहीं देता तो इसमें सूर्य का क्या दोष है? इसी प्रकार वर्षा का जल यदि चातक के मुंह में नहीं पड़ता तो इसमें मेघों का क्या दोष है?

इसका अर्थ यही है कि ब्रह्मा ने भाग्य में जो लिख दिया है, उसे कौन मिटा सकता है?।।6।।

यहां आचार्य चाणक्य के कहने का आशय यह है कि भाग्य प्रबल है, अटल है। उसके लिखे को कोई नहीं मिटा सकता।

सत्संगाद् भवति हि साधुता खलानां,
साधूनां न हि खलसंगयात् खलत्वम्।
आमोदं कुसुम - भवं मृदेव धत्ते,
मृद्गन्धं न हि कुसुमानि धारयन्ति।।

अच्छी संगति से दुष्टों में भी साधुता आ जाती है। उत्तम लोग दुष्ट के साथ रहने के बाद भी नीच नहीं होते। फूल की सुगंध को मिट्टी तो ग्रहण कर लेती है, पर मिट्टी की गंध को फूल ग्रहण नहीं करता।। 7।।

भाव यह है कि जिस प्रकार मिट्टी फूल की खुशबू तो ग्रहण कर लेती है परंतु मिटी की गंध को फूल ग्रहण नहीं करते

उसी प्रकार सत्संगति का प्रभाव दुष्ट पर पड़ता है, पर दुष्टता का प्रभाव साधु लोगों पर नहीं पड़ता।

साधूनां दर्शनं पुण्यं तीर्थभूता हि साधवः।
कालेन फलति तीर्थं सद्यः साधुसमागमः॥

साधु अर्थात महान लोगों के दर्शन करना पुण्य तीर्थों के समान है। तीर्थाटन का फल समय से ही प्राप्त होता है, परंतु साधुओं की संगति का फल तत्काल प्राप्त होता है।। 8।।

साधुओं, सज्जनों का दर्शनमात्र भी पुण्यप्रद है, क्योंकि साधु-संत साक्षात् तीर्थ रूप होते हैं। तीर्थ तो समय आने पर फल देते हैं, परंतु साधुओं का दर्शन तो तुरंत फल प्रदान करता है।

विप्राऽस्मिन् नगरे महान् कथय कस्तालद्रुमाणां गणः,
को दाता रजको ददाति वसनं प्रातर्गृहीत्वा निशि।
को दक्षः परवित्तदारहरणे सर्वोऽपि दक्षो जनः,
कस्माज्जीवसि हे सखे! विषकृमिन्यायेनजीवाम्यहम्॥

एक ब्राह्मण से किसी ने पूछा—'हे विप्र! इस नगर में बड़ा कौन है ?' ब्राह्मण ने उत्तर दिया—'ताड़ के वृक्षों का समूह।' प्रश्न करने वाले ने एक पल बाद फिर पूछा—'इसमें दानी कौन है ?' उत्तर मिला—'धोबी है। वही प्रातःकाल प्रतिदिन कपड़ा ले जाता है और शाम को दे जाता है।' पूछा गया—'चतुर कौन है ?' उत्तर मिला—'दूसरों की स्त्री को चुराने में सभी चतुर हैं।' आश्चर्य से उसने पूछा—'तो मित्र ! यहां जीवित कैसे रहते हो ?' उत्तर मिला—'मैं जहर के कीड़ों की भांति किसी प्रकार जी रहा हूं।'।।9।।

इस श्लोक में चाणक्य ने सामाजिक स्थिति को स्पष्ट करते हुए बताया है कि वास्तव में डींगें हांकने से कोई बड़ा नहीं

हो जाता, किसी से कोई चीज मांगकर उसे वापस देने से कोई दानी नहीं बन जाता, परंतु आज की स्थिति तो यही है कि आदमी समाज की विषम परिस्थितियों के मध्य कीड़े-मकोड़ों की भांति अपना जीवन काट रहा है।

न विप्रपादोदक-कर्दमानि, न वेदशास्त्र-ध्वनि-गर्जितानि।
स्वाहा-स्वधाकार विवर्जितानि, श्मशानतुल्यानि गृहाणि तानि॥

जहां ब्राह्मणों के चरण नहीं धोए जाते अर्थात उनका आदर नहीं किया जाता, जहां वेद-शास्त्रों के श्लोकों की ध्वनि नहीं गूंजती तथा यज्ञ आदि से देव-पूजन नहीं किया जाता, वे घर श्मशान के समान हैं।।10।।

जिन घरों में ब्राह्मणों के पैरों को धुलाने वाले जल से कीचड़ नहीं हो जाता, जहां वेदादि शास्त्रों की ध्वनियां नहीं गूंजतीं, वे घर श्मशान के समान हैं।

सत्यं माता पिता ज्ञानं धर्मो भ्राता दया स्व सा।
शान्तिः पत्नी क्षमा पुत्रः षडेते मम बान्धवाः॥

सत्य मेरी माता है, पिता मेरा ज्ञान है, धर्म मेरा भाई है, दया मेरी मित्र है, शान्ति मेरी पत्नी है और क्षमा मेरा पुत्र है, ये छः मेरे बंधु-बांधव हैं।। 11।।

मोह-माया से विरक्त होने के उपरान्त व्यक्ति अपने सभी भौतिक तथा सांसारिक रिश्ते-नातों को खत्म कर लेता है, तभी सत्य को वह अपनी माता, ज्ञान को पिता, धर्म को भाई, दया को मित्र, शान्ति को स्त्री और क्षमा को अपना पुत्र बताता है।

अनित्यानि शरीराणि विभवो नैव शाश्वतः।
नित्यं सन्निहितो मृत्युः कर्तव्यो धर्मसंग्रहः॥

सभी शरीर नाशवान हैं, सभी धन-सम्पत्तियां

चलायमान हैं और मृत्यु निकट है। ऐसे में मनुष्य को सदैव धर्म का संचय करना चाहिए। इस प्रकार यह संसार नश्वर है। केवल सद्‌कर्म ही नित्य और स्थायी हैं। हमें इन्हीं को अपने जीवन का अंग बनाना चाहिए।। 12।।

आचार्य चाणक्य ने प्रस्तुत श्लोक में धर्म आचरण की महत्ता का वर्णन किया है। शरीर नाशवान है, धन-संपत्ति भी सदा रहने वाली नहीं है, मौत सदा सिरहाने खड़ी है, अतः धर्म का संचय, धर्माचरण करना चाहिए।

आमन्त्रणोत्सवा विप्रा गावो नवतृणोत्सवाः।
पत्युत्साहयुता नार्याः अहं कृष्ण-रणोत्सवः।।

निमन्त्रण पाकर ब्राह्मण प्रसन्न होते हैं, जैसे हरी घास देखकर गौओं के लिए उत्सव अर्थात प्रसन्नता का माहौल बन जाता है। ऐसे ही पति के प्रसन्न होने पर स्त्री के लिए घर में उत्सव का-सा दृश्य उपस्थित हो जाता है, परंतु मेरे लिए भीषण रण में अनुराग रखना उत्सव के समान है। मेरे लिए युद्धरत होना जीवन की सार्थकता है।। 13।।

आचार्य चाणक्य प्रस्तुत श्लोक में अपने लिए कहते हैं कि मेरे लिए तो भयंकर मार-काट वाला युद्ध ही उत्सव है। भोजन के लिए निमंत्रण मिलना ब्राह्मणों के लिए उत्सव समान। चरने के लिए नई घास गौओं के लिए।

पति का उत्साह से युक्त रहना स्त्रियों के लिए और चाणक्य के लिए भयंकर मार-काट वाला युद्ध ही उत्सव के समान है।

मातृवत् परदारेषु परद्रव्याणि लोष्ठवत्।
आत्मवत् सर्वभूतानि यः पश्यति सः पण्डितः।।

जो व्यक्ति दूसरे की स्त्री को माता के समान, दूसरे के

धन को ढेले (कंकड़) के समान और सभी जीवों को अपने समान देखता है, वही पंडित है, विद्वान है।। 14।।

दूसरे की स्त्री का मोह और दूसरे के धन का लालच बहुत प्रबल होता है, परंतु जो उनमें आसक्त न होकर परोपकार करता है, सभी जीवों को अपना समझता है, वास्तव में वही विद्वान है।

धर्मे तत्परता मुखे मधुरता दाने समुत्साहता,
मित्रेऽवंचकता गुरौ विनयता चित्तेऽतिगंभीरता।
आचारे शुचिता गुणे रसिकता शास्त्रेषु विज्ञानता,
रूपे सुन्दरता शिवे भजनता स्वय्यस्ति भो राघवः।।

महर्षि वशिष्ठ राम से कहते हैं—'हे राम! धर्म के निर्वाह में सदैव तत्पर रहने, मधुर वचनों का प्रयोग करने, दान में रुचि, मित्र से निश्छल व्यवहार करने, गुरु के प्रति सदैव विनम्रता रखने, चित्त में अत्यन्त गंभीरता को बनाए रखने, ओछेपन को त्यागने, आचार-विचार में पवित्रता रखने, गुण ग्रहण करने के प्रति सदैव आग्रह रखने, शास्त्रों में निपुणता प्राप्त करने तथा शिव के प्रति सदा भक्ति-भाव रखने के गुण केवल तुम्हारे भीतर ही दिखलाई पड़ते हैं इसीलिए लोग तुम्हें मर्यादा पुरुषोत्तम कहते हैं।'।। 15।।

आचार्य चाणक्य ने प्रस्तुत श्लोक में सज्जनता की सही पहचान बताई है। परेमश्वर (ईश्वर) की भक्ति तथा अन्य अच्छी बातें और संस्कार सज्जनों में दृष्टिगोचर होने चाहिए।

काष्ठं कल्पतरुः सुमेरुचलश्चिन्तामणिः प्रस्तरः
सूर्यस्तीव्रकरः शशी क्षयकरः क्षारो हि वारां निधिः।
कामो नष्टतनुर्बलिर्दितिसुतो नित्यं पशुः कामगौः,
नैतास्ते तुलयामि भो रघुपते! कस्योपमा दीयते।।

हे रघुपति! राम! कल्पवृक्ष काष्ठ है, सुमेरू पर्वत है,

चिन्तामणि पत्थर है, सूर्य तीक्ष्ण किरणों वाला है, चन्द्रमा क्षीण होता रहता है, समुद्र खारा है, कामदेव अनंग (बिना शरीर का) है, राजा बलि दैत्यपुत्र है और कामधेनु पशु है। ये सभी उत्तम हैं, परंतु मैं जब आपकी तुलना करता हूं प्रभु! तो आपकी किससे उपमा करूं, यह मेरी समझ में नहीं आता, अर्थात प्रभु! आपकी उपमा तो किसी से भी नहीं दी जा सकती। यह रामोपासना का सुंदर श्लोक है।।16।।

आचार्य चाणक्य ने प्रस्तुत श्लोक में भगवान राम के प्रति अपार श्रद्धा प्रकट की है। ईश्वर अपरम्पार है, उसकी तुलना किसी से नहीं की जा सकती।

विनयं राजपुत्रेभ्यः पण्डितेभ्यः सुभाषितम्।
अनृतं द्यूतकारेभ्यः स्त्रीभ्यः शिक्षेत् कैतवम्।।

राजपुत्रों से नम्रता, पंडितों से मधुर वचन, जुआरियों से असत्य बोलना और स्त्रियों से धूर्तता सीखनी चाहिए।।17।।

आचार्य चाणक्य ने प्रस्तुत श्लोक के माध्यम से बताया है कि राजपुत्रों में अपने पिता के संस्कारस्वरूप नम्रता के गुण आते हैं, पंडितों में बोलने का उत्तम ढंग मिलता है, इन्हें सीखने के रूप में इंसान को अपनाना चाहिए।

अनालोक्य व्ययं कर्ता ह्यनाथः कलहप्रियः।
आतुरः सर्वक्षेत्रेषु नरः शीघ्रं विनश्यति।।

बिना विचार के खर्च करने वाला, अकेले रहकर झगड़ा करने वाला और सभी जगह व्याकुल रहने वाला मनुष्य शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।।18।।

प्रस्तुत श्लोक में आचार्य चाणक्य ने अनेक उपयोगी बातें बताई हैं। उनके अनुसार आय के अनुसार ही खर्च करना चाहिए। जितनी चादर हो उतने ही पैर फैलाने चाहिए। अकेले में

अर्थात बिना हिमायती के शत्रु से झगड़ा करना उचित नहीं है। हर समय चिन्ता में रहने से स्वास्थ्य क्षीण हो जाता है और आदमी असमय में ही अपने आपको खत्म कर लेता है।

नाहारं चिन्तयेत्प्राज्ञो धर्ममेकं हि चिन्तयेत्।
आहारो ही मनुष्याणां जन्मना सह जायते।।

बुद्धिमान पुरुष को भोजन की चिन्ता नहीं करनी चाहिए। उसे केवल एक धर्म का ही चिन्तन-मनन करना चाहिए। वास्तव में मनुष्य का आहार (मां का दूध) तो उसके जन्म के साथ-साथ ही पैदा होता है।।19।।

आचार्य चाणक्य ने प्रस्तुत श्लोक में धर्म के पालन अर्थात ध र्म कमाने पर जोर दिया है, क्योंकि मृत्यु के बाद धर्म ही साथ जाता है।

बुद्धिमान मनुष्य को अपने आहार, भोजन के संबंध में सोच-विचार नहीं करना चाहिए, क्योंकि मनुष्य का आहार तो उसके जन्म के साथ ही उत्पन्न हो जाता है। उसे तो केवल धर्म का ही चिंतन करना चाहिए, क्योंकि यही उसके अपने अर्जित करने का विषय होता है।

जलबिन्दुनिपातेन क्रमशः पूर्यते घटः।
स हेतुः सर्वविद्यानां धर्मस्य च धनस्य च।।

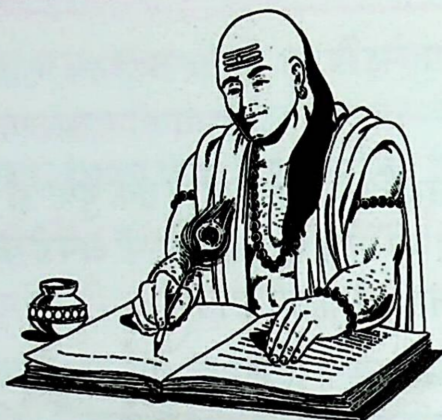
धन और अन्न के व्यवहार में, विद्या ग्रहण करने में, भोजन करने में और व्यवहार में जो व्यक्ति लज्जा नहीं करता, वह सदैव सुखी रहता है।।20।।

आचार्य चाणक्य ने उपरोक्त श्लोक के माध्यम से ज्ञान दिया है कि मनुष्य को धर्म के लिए भी थोड़ा समय अपने व्यस्त जीवन में निकालना चाहिए। थोड़ा-थोड़ा ही बहुत हो जाता है।

वयसः परिणामेऽपि यः खलः खलः एव सः।
सुपक्वमपि माधुर्यं नोपयातीन्द्रवारुणम्॥

जो दुष्ट है, वह उम्र के अन्तिम पड़ाव तक दुष्ट ही रहता है। जिस प्रकार इन्द्रायण का फल पक जाने पर भी अपनी कटुता नहीं छोड़ता और मीठा नहीं हो जाता॥21॥

यह किसी-किसी का स्वाभाविक गुण बन जाता है जो जीवन-भर उसका पीछा नहीं छोड़ता। वह जैसा है आखिर तक वैसा ही रहता है।



॥ अथ त्रयोदश अध्याय ॥

मुहूर्तमपि जीवेच्च नरः शुक्लेन कर्मणा।
न कल्पमपि कष्टेन लोकद्वयविरोधिना॥

उत्तम कर्म करते हुए एक पल का जीवन भी श्रेष्ठ है, परंतु दोनों लोकों (लोक-परलोक) में दुष्कर्म करते हुए कल्प भर का जीवन (हजारों वर्षों का जीना) भी श्रेष्ठ नहीं है॥ 1॥

भाव यही है कि मनुष्य को जितना भी जीवन मिला है, उसे श्रेष्ठ कर्मों में ही लगाना उचित है।

गते शोको न कर्तव्यो भविष्यं नैव चिन्तयेत्।
वर्तमानेन कालेन प्रवर्तन्ते विचक्षणाः॥

बीते हुए का शोक नहीं करना चाहिए और भविष्य में जो कुछ होने वाला है, उसकी चिन्ता नहीं करनी चाहिए। आए हुए समय को देखकर ही विद्वान लोग किसी कार्य में लगते हैं॥2॥

इस प्रकार बुद्धिमान व्यक्ति वही है जो वर्तमान के संबंध में ही सोच-विचारकर कार्य करता है, अर्थात जो वर्तमान में जीता है, भूत और भविष्य की चिन्ता नहीं करता।

स्वभावेन हि तुष्यन्ति देवाः सत्पुरुषाः पिता।
ज्ञातयः स्वन्न-पानाभ्यां वाक्यदानेन पण्डिताः।।

उत्तम स्वभाव से ही देवता, सज्जन और पिता संतुष्ट होते हैं। बंधु-बांधव खान-पान से और श्रेष्ठ वार्तालाप से पंडित अर्थात विद्वान प्रसन्न होते हैं। मनुष्य को अपने मृदुल स्वभाव को बनाए रखना चाहिए।।3।।

आचार्य चाणक्य ने प्रस्तुत श्लोक में बताया है कि जो जैसे प्रसन्न हो उसे वैसे ही प्रसन्न करना चाहिए। विद्वान लोग, सज्जन पुरुष और पिता ये स्वभाव से ही संतुष्ट होते हैं। बंधु-बांधव, खान-पान और पण्डितगण मधुर भाषण (सम्मान देने) से प्रसन्न होते हैं।

अहो बत विचित्राणि चरितानि महात्मनाम्।
लक्ष्मीं तृणाय मन्यन्ते तद्भारेण नमन्ति च।।

अहो! आश्चर्य है कि बड़ों के स्वभाव विचित्र होते हैं, वे लक्ष्मी को तृण के समान समझते हैं और उसके प्राप्त होने पर, उसके भार से और भी अधिक नम्र हो जाते हैं।।4।।

भाव यह है कि जो महान हैं, वे धन के महत्त्व को कुछ नहीं समझते। उनका स्नेहिल स्वभाव धन से भी ऊंचा होता है।

यस्य स्नेहो भयं तस्य स्नेहो दुःखस्य भाजनम्।
स्नेहमूलानि दुःखानि तानि त्यक्त्वा वसेत् सुखम्।।

जिसे किसी से लगाव है, वह उतना ही भयभीत होता है। लगाव दुःख का कारण है। दुःखों की जड़ लगाव है। अतः लगाव को छोड़कर सुख से रहना सीखो।। 5।।

प्रस्तुत श्लोक में आचार्य चाणक्य ने लगाव को दुखों का मूल कारण बताते हुए स्पष्ट किया है कि जिसे किसी से लगाव

अर्थात मोह हो जाता है, उसके न रहने की शंका से ही उसे भय होने लगता है और यह भय उसे दुःख पहुंचाने वाला होता है। मोह ही सारे कष्टों का जड़ है इसलिए लगाव अर्थात मोह को त्याग देना ही उत्तम है।

अनागतविधाता च प्रत्युत्पन्नमतिस्तथा।
द्वावेते सुखमेधेते यद्भविष्यो विनश्यति।।

भविष्य में आने वाली सम्भावित विपत्ति और वर्तमान में उपस्थित विपत्ति पर जो तत्काल विचार करके उसका समाधान खोज लेते हैं, वे सदा सुखी रहते हैं। इसके अलावा जो ऐसा सोचते रहते हैं कि 'यह होगा, वैसा होगा तथा जो होगा, देखा जाएगा' और कुछ उपाय नहीं करते, वे शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं।।6।।

प्रस्तुत श्लोक में आचार्य चाणक्य ने कर्म करने और मात्र भगवान के भरोसे न बैठने रहने की बात कही है। उनके कहने का भाव यह है कि केवल भाग्य के भरोसे ही नहीं बैठे रहना चाहिए। विपत्ति आने पर या उसके आने की संभावना होने पर तत्काल उपाय कर लेने चाहिए। जो व्यक्ति विपत्ति को भगवान की ओर से रचा गया भाग्य कहकर उसे समाप्त करने का उपाय नहीं करते, वे अंततः नष्ट हो जाते हैं।

राज्ञि धर्मिणि धर्मष्ठाः पापे पापाः समे समाः।
राजानमनुवर्तन्ते यथा राजा तथा प्रजाः।।

जैसा राजा होता है, उसकी प्रजा भी वैसी ही होती है। धर्मात्मा राजा के राज्य की प्रजा धर्मात्मा, पापी के राज्य की पापी और मध्यम वर्गीय राजा के राज्य की प्रजा मध्यम अर्थात राजा का अनुसरण करने वाली होती है।।7।।

आचार्य चाणक्य ने प्रस्तुत श्लोक के माध्यम से ज्ञान दिया है कि यदि राजा दुर्बल, शासन चलाने में असमर्थ,

पापाचारी, शासन तंत्र चलाने में अक्षम है तो शासक वर्ग को प्रजा को लूटने का अच्छा अवसर मिल जाता है।

जीवन्तं मृतवन्मन्ये देहिनं धर्मवर्जितम्।
मृतो धर्मेण संयुक्तो दीर्घजीवी न संशयः॥

धर्म से विमुख व्यक्ति जीवित भी मृतक के समान है, परंतु धर्म का आचरण करने वाला व्यक्ति चिरंजीवी होता है॥ 8॥

भाव यह है कि धर्म का आचरण करने से मनुष्य के सदाचरण युग-युग तक लोगों की जुबान पर रहते हैं और वह व्यक्ति सशरीर न होने पर भी लोगों के दिलों में जीवित रहता है। इसमें संशय नहीं करना चाहिए।

धर्मार्थकाममोक्षाणां यस्यैकोऽपि न विद्यते।
अजागलस्तनस्येव तस्य जन्म निरर्थकम्॥

धर्म, धन, काम, मोक्ष, इनमें से जिसने एक को भी नहीं पाया, उसका जीवन व्यर्थ है॥ 9॥

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—इन चारों का संबंध इस लोक और परलोक, दोनों से है। मनुष्य को अपना जीवन सार्थक करने के लिए इनमें से किसी एक को तो अवश्य ही पाना चाहिए।

दह्यमानाः सुतीव्रेण नीचाः परयशोऽग्निना।
अशक्तास्तत्पदं गन्तुं ततो निन्दां प्रकुर्वते॥

नीच मनुष्य दूसरों की यशस्वी अग्नि की तेजी से जलते हैं और उस स्थान पर (उस यश को पाने के स्थान पर) न पहुंचने के कारण उनकी निन्दा करते हैं॥ 10॥

दूसरों की निन्दा सदैव दुष्ट व्यक्ति ही किया करते हैं। वे दूसरों के यश को देखकर सदैव ईर्ष्या से जलते रहते हैं।

बन्धाय विषयाऽऽसक्तं मुक्त्ये निर्विषयं मनः।
मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः॥

मन को विषयहीन अर्थात माया-मोह से मुक्त करके ही मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है क्योंकि मन में विषय-वासनाओं के आवागमन के कारण ही मनुष्य माया-मोह के जाल में आसक्त रहता है। अतः मोक्ष (जीवन-मरण) से छुटकारा पाने के लिए मन का विकाररहित होना आवश्यक है॥ 11॥

आचार्य चाणक्य ने प्रस्तुत श्लोक में व्याख्या दी है कि मन ही बंधन और मोक्ष का कारण है।

अतः मन को जीतने का प्रयत्न करना चाहिए।

देहाभिमाने गलिते विज्ञाते परमात्मनि।
यत्र यत्र मनो याति तत्र तत्र समाधयः॥

परम तत्त्वज्ञान प्राप्त होने पर जब मनुष्य देह के अभिमान को छोड़ देता है अर्थात जब उसे आत्मा-परमात्मा की नित्यता और शरीर की क्षणभंगुरता का ज्ञान हो जाता है तो वह इस शरीर के मोह को छोड़ देता है। तदुपरान्त उसका मन जहां-जहां भी जाता है, वहां-वहां उसे सिद्ध पुरुषों की समाधियों की अनुभूति होती है॥ 12॥

भाव यह है कि जाग्रत-अवस्था में होते हुए भी वह समाधि जैसी स्थिति में आ जाता है।

ईप्सितं मनसः सर्वं कस्य सम्पद्यते सुखम्।
दैवाऽऽयत्तं यतः सर्वं तस्मात् संतोषमाश्रयेत्॥

मन की इच्छा के अनुसार सारे सुख किसको मिलते हैं? अर्थात् किसी को नहीं मिलते। इससे यह सिद्ध होता है कि 'दैव' के ही बस में सब कुछ है। अतः संतोष का ही आश्रय लेना चाहिए।

संतोष सबसे बड़ा धन है। सुख और दुःख में उसे समरस रहना चाहिए। कहा भी है—'जाहि विध राखे राम, ताहि विध रहिए।'।।13।।

आचार्य चाणक्य ने प्रस्तुत श्लोक के माध्यम से कहा है कि संतोष ही सुख का मूल है, अतः संतोष धारण करना चाहिए। संतोष से बढ़कर कोई और सुख नहीं होता। सुख के इच्छुक को संतोष का सहारा लेकर अपने-आपको संयम में रखना चाहिए। असंतोष दुख का कारण है।

यथा धेनुसहस्रेषु वत्सो गच्छति मारतम्।
तथा यच्च कृतं कर्म कर्तारमनुगच्छति।।

जैसे हजारों गायों के मध्य भी बछड़ा अपनी ही माता के पास आता है, उसी प्रकार किए गए कर्म कर्ता के पीछे-पीछे जाते हैं।।14।।

आदमी जैसे कर्म करता है, उसे फल भी उसी के कर्मों के अनुसार प्राप्त होते हैं। अतः सदैव अच्छे कर्म करके अपना जीवन सुधारना चाहिए।

अनवस्थितकार्यस्य न जने न वने सुखम्।
जने दहति संसर्गो वने संगविवर्जनम्।।

अव्यवस्थित कार्य करने वाले को न तो समाज में और न वन में सुख प्राप्त होता है क्योंकि समाज में लोग उसे भला-बुरा कहकर जलाते हैं और निर्जन वन में अकेला होने के कारण वह दुःखी होता है।।15।।

भाव यह है कि ऐसे व्यक्ति को न तो घर में सुख मिलता है, न संन्यास लेने पर सुख प्राप्त होता है।

सच्चा सुख कर्तव्य पथ का निश्चय करके, उस पर चलने में है।

खनित्वा हि खनित्रेण भूतले वारि विन्दति।
तथा गुरुगतां विद्यां शुश्रूषुरधिगच्छति।।

जिस प्रकार फावड़े अथवा कुदाल से खोदकर व्यक्ति धरती के नीचे से जल प्राप्त कर लेता है, उसी प्रकार एक शिष्य गुरु की मन से सेवा करके विद्या प्राप्त कर लेता है।। 16।।

सेवा और कठोर श्रम से ही फल प्राप्त होता है। बिना साधना के सेवा भी व्यर्थ हो जाती है। अत: सेवा के साथ-साथ कठोर परिश्रम भी आवश्यक है। विद्या प्राप्त करने के लिए गुरु की सेवा करनी चाहिए, तभी शिक्षा की प्राप्ति होती है।

कर्मायत्तं फलं पुंसां बुद्धिः कर्मानुसारिणी।
तथापि सुधियश्चाऽऽर्या सुविचार्यैव कुर्वते।।

फल कर्म के अधीन है, बुद्धि कर्म के अनुसार होती है, तब भी बुद्धिमान लोग और महान लोग सोच-विचार करके ही कोई कार्य करते हैं।। 17।।

किसी भी कार्य को करने से पूर्व अच्छी प्रकार से सोच-समझ लेना चाहिए, तभी कार्य अच्छे होते हैं।

संतोषस्त्रिषु कर्त्तव्यः स्वदारे भोजने धने।
त्रिषु चैव न कर्तव्योऽध्ययने जपदानयोः।।

अपनी स्त्री, भोजन और धन, इन तीनों में संतोष करना चाहिए और विद्या पढ़ने, जप करने और दान देने, इन तीनों में संतोष नहीं करना चाहिए।। 18।।

भाव यह है कि दान, ईश्वर ध्यान और स्वाध्याय, इनमें कभी भी कंजूसी नहीं करनी चाहिए। जी भरकर दान देना चाहिए और पूर्ण मनोयोग से ईश्वर की आराधना और शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए।

एकाक्षरप्रदातारं यो गुरुं नाभिवन्दति।
श्वानयोनिशतं भुक्त्वा चांडालेष्वभिजायते।।

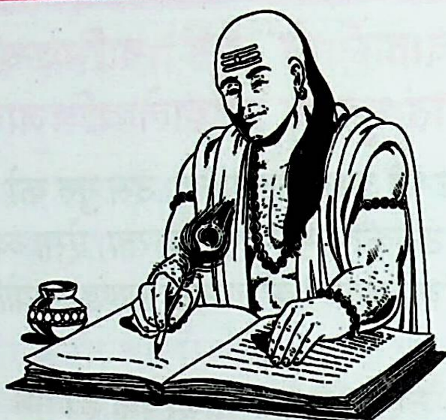
जिस गुरु ने एक भी अक्षर पढ़ाया हो, उस गुरु को जो प्रणाम नहीं करता अर्थात उसका सम्मान नहीं करता, ऐसा व्यक्ति कुत्ते की सैकड़ों योनियों को भुगतने के उपरान्त चाण्डाल योनि में जन्म लेता है।।19।।

गुरु का सम्मान करना अत्यन्त आवश्यक है। गुरु का स्थान गोविन्द से भी बड़ा होता है।

युगान्ते प्रचलते मेरुः कल्पान्ते सप्त सागराः।
साधवः प्रतिपन्नार्थान् न चलन्ति कदाचन।।

प्रलय काल में चाहे मेरु पर्वत डगमगा जाए और कल्प के अन्त में सातों सागर चाहे अपनी मर्यादा छोड़ दें, परंतु महान विभूतियां, श्रेष्ठ साधु अपने लक्ष्य से कभी विचलित नहीं होते।।20।।

भाव यह है कि बड़े लोगों के सम्मुख कितनी ही विपत्तियां क्यों न आ जाएं, वे अपने लक्ष्य से कभी भी विचलित नहीं होते। जो सोच लेते हैं, उसे करके ही हटते हैं। वे कभी अपनी मान्यताओं, अपने सिद्धान्तों, अपने आदर्शों और अपने उद्देश्य से पीछे नहीं हटते। उनका मार्ग परजन हितकारी होता है और वे जीवन-भर उसी पर चलते रहते हैं।



॥अथ चतुर्दश अध्याय॥

पृथिव्यां त्रीणि रत्नानि जलमन्नं सुभाषितम्।
मूढैः पाषाणखण्डेषु रत्नसंज्ञा विधीयते॥

इस पृथ्वी पर तीन ही रत्न हैं——जल, अन्न और मधुर वचन! बुद्धिमान व्यक्ति इनकी समझ रखता है, परंतु मूर्ख लोग पत्थर के टुकड़ों को ही रत्न कहते हैं॥1॥

जल और अन्न के बिना आदमी का जीवन बिल्कुल भी संभव नहीं है और मधुर वचनों के बिना समाज में विचरण करना मुश्किल है। कटु वचन कहने वाले का कोई भी आदर नहीं करता।

दारिद्रय्रोधदुःखानि बंधनव्यसनानि च।
आत्माऽपराधवृक्षस्य फलान्येतानि देहिनाम्॥

मनुष्य के अधर्मरूपी वृक्ष (अर्थात शरीर) के फल——दरिद्रता, रोग, दुःख, बंधन (मोह–माया), व्यसन आदि हैं॥2॥

मनुष्य यदि अधर्म के मार्ग पर चलता है तो उसे अपने जीवन में उपर्युक्त दुःखों का सामना करना पड़ता है।

पुनर्वितं पुनर्मित्रं पुनर्भार्या पुनर्मही।
एतत्सर्वं पुनर्लभ्यं न शरीरं पुनः पुनः॥

धन, मित्र, स्त्री और पृथ्वी, ये बार-बार प्राप्त होते हैं, परंतु मनुष्य का शरीर बार-बार नहीं मिलता॥3॥

प्रस्तुत श्लोक में आचार्य चाणक्य ने मानव शरीर का महत्त्व बताया है।

उनके अनुसार मानव शरीर चौरासी लाख योनियों में भ्रमण करने के उपरान्त ही प्राप्त होता है। यह अत्यन्त दुर्लभ है। इसमें ईश्वर को स्मरण किया जा सकता है।

बहूनां चैव सत्त्वानां समवायो रिपुंजयः।
वर्षधाराधरो मेघस्तृणैरपि निवार्यते॥

यह एक निश्चित तथ्य है कि बहुत-से लोगों का समूह ही शत्रु पर विजय प्राप्त करता है, जैसे वर्षा की धार को धारण करने वाले मेघों के जल को तिनकों के द्वारा (तिनके का बना छप्पर) ही रोका जा सकता है॥4॥

भाव यह है कि एकता में बड़ा बल होता है। वह बड़ी-से-बड़ी शक्ति से टकरा सकता है।

जले तैलं खले गुह्यं पात्रे दानं मनागपि।
प्राज्ञे शास्त्रं स्वयं याति विस्तारं वस्तुशक्तितः॥

पानी में तेल, दुष्ट व्यक्तियों में गोपनीय बातें, उत्तम पात्र को दिया गया दान और बुद्धिमान के पास शास्त्र-ज्ञान यदि थोड़ा भी हो तो स्वयं वह अपनी शक्ति से विस्तार पा जाता है॥5॥

भाव यह है कि जिस प्रकार पानी में डाला गया जरा-सा तेल भी फैल जाता है, दुष्टों में पहुंची गोपनीय बातें चारों तरफ फैल जाती हैं, उसी प्रकार उत्तम पात्र को दिया गया दान बहुत परोपकार

करता है और बुद्धिमान का थोड़ा-सा शास्त्र ज्ञान भी काफी लोगों को प्रबुद्ध करता है। ज्ञान का विस्तार इसी प्रकार होता है, अर्थात सभी चीजों का अपना-अपना महत्त्व है।

धर्माऽऽख्याने श्मशाने च रोगिणां या मतिर्भवेत्।
सा सर्वदैव तिष्ठेच्चेत् को न मुच्येत बंधनात्॥

धार्मिक कथा सुनने पर, श्मशान में चिता को जलते देखकर, रोगी को कष्ट में पड़े देखकर जिस प्रकार वैराग्य भाव उत्पन्न होता है, वह यदि स्थिर रहे तो यह सांसारिक मोह-माया व्यर्थ लगने लगे, परंतु अस्थिर मन श्मशान से लौटने पर फिर से मोह-माया में फंस जाता है।।6।।

प्रस्तुत श्लोक में आचार्य चाणक्य ने सांसारिक मोह-माया से बचने के लिए मन को दृढ़ बनाने की बात कही है। उनके अनुसार अस्थिर मन से संसार से विमुक्त होने की कामना करना कभी सुखकारी नहीं होता।

उत्पन्नपश्चात्तापस्य बुद्धिर्भवति यादृशी।
तादृशी यदि पूर्वं स्यात् कस्य न स्यान्महोदयः॥

चिंता करने वाले व्यक्ति के मन में चिंता उत्पन्न होने के बाद की जो स्थिति होती है अर्थात उसकी जैसी बुद्धि हो जाती है, वैसी बुद्धि यदि पहले से ही रहे तो भला किसका भाग्योदय नहीं होगा।।7।।

इस श्लोक में चाणक्य ने बताया है कि गलत कार्य करने के उपरान्त पश्चाताप के समय उसकी जैसी निर्मल बुद्धि हो जाती है, यदि वैसी निर्मल बुद्धि पहले से ही रहे तो भला किसका कल्याण नहीं होगा।

दाने तपसि शौर्ये च विज्ञाने विनये नए।
विस्मयो न हि कर्त्तव्यो बहुरत्ना वसुंधरा॥

दान, तपस्या, वीरता, ज्ञान, नम्रता, किसी में ऐसी विशेषता को देखकर आश्चर्य नहीं करना चाहिए क्योंकि इस दुनिया में ऐसे अनेक रत्न भरे पड़े हैं॥8॥

भाव यह है कि दुनिया में एक से बढ़कर एक व्यक्ति ऐसे हैं जो दान, तप, वीरता, ज्ञान और संवेदनशीलता में बढ़े-चढ़े हैं। कहां तक आश्चर्य किया जा सकता है।

दूरस्थोऽपि न दूरस्थो यो यस्य मनसि स्थितः।
यो यस्य हृदये नास्ति समीपस्थोऽपि दूरतः॥

जो जिसके मन में है, वह उससे दूर रहकर भी दूर नहीं है और जो जिसके हृदय में नहीं है, वह समीप रहते हुए भी दूर है॥9॥

भाव यह है कि सच्चा प्रेम हृदय से होता है, उसमें दूरी का अथवा पास का कोई व्यवधान नहीं होता। सच्चे प्रेम में प्रिय हर समय आंखों के सम्मुख ही रहता है।

यस्य चाप्रियमिच्छेत तस्य ब्रूयात् सदा प्रियम्।
व्याधो मृगवधं कर्तु गीतं गायति सुस्वरम्॥

जिससे अपना हित साधना हो, उससे सदैव प्रिय बोलना चाहिए जैसे मृग को मारने के लिए बहेलिया मीठे स्वर में गीत गाता है॥10॥

यहां चाणक्य ने कूटनीति की ओर इशारा किया है कि अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए राजा को सदैव अपने शत्रु से मीठा-व्यवहार करना चाहिए। उससे मधुर-वाणी में बात करनी चाहिए।

अत्यासन्ना विनाशाय दूरस्था न फलप्रदा:।
सेव्यन्ता मध्यभागेन वह्निगुरुः स्त्रियः॥

राजा, अग्नि, गुरु और स्त्री, इनसे सामान्य व्यवहार करना चाहिए क्योंकि अत्यंत समीप होने पर ये नाश के कारण होते हैं और दूर रहने पर इनसे कोई फल प्राप्त नहीं होता॥ 11॥

भाव यह है कि इनसे व्यवहार करते समय मध्यम मार्ग अपनाएं। 'न नीम से कड़वा और न गुड़ से मीठा।' ज्यादा दूरी भी नहीं और ज्यादा पास भी नहीं।

अग्निराप: स्त्रियो मूर्खः सर्पा राजकुलानि च।
नित्यं यत्नेन सेव्यानि सद्यः प्राणहराणि षट्॥

अग्नि, पानी, स्त्रियां, मूर्ख, सांप और राजाकुल से निकट संबंध सावधानी के साथ करना चाहिए क्योंकि ये छः तत्काल प्राणों को हरने वाले हैं॥ 12॥

प्रस्तुत श्लोक में आचार्य चाणक्य ने अग्नि, पानी, स्त्रियां, मूर्ख, सांप और राजवंश से सतर्क रहने की बात कही है। उनके अनुसार अग्नि के प्रति, जल के प्रति, स्त्री के प्रति, मूर्ख व्यक्ति के प्रति, सर्प के प्रति और राजवंश के प्रति यदि जरा भी असावधानी दिखाई तो प्राण संकट में पड़ सकते हैं। इनसे बहुत सावधान रहना चाहिए।

स जीवति गुना यस्य यस्य धर्मः स जीवति।
गुणधर्मविहीनस्य जीवितं निष्प्रयोजनम्॥

जिसके पास गुण हैं, जिसके पास धर्म है, वही जीवित है। गुण और धर्म से विहीन व्यक्ति का जीवन निरर्थक है॥ 13॥

चाणक्य ने मनुष्य में गुण के उपस्थित होने पर बल दिया है। गुण से तात्पर्य दयाभाव, जगत-कल्याण की भावना तथा परोपकार है।

यदीच्छसी वशीकर्तुं जगदेकेन कर्मणा।
पंचदशास्येभ्यो गां चरन्ती निवारय।।

यदि एक ही कर्म से समस्त संसार को वश में करना चाहते हो तो पंद्रह मुखों से विचरण करने वाले मन को रोको, अर्थात उसे वश में करो। पंद्रह मुख हैं——मुंह, आंख, कान, नाक, जीभ, त्वक्, हाथ, पैर, लिंग, गुदा, रूप, रस, गंध, स्पर्श और शब्द।। 14।

कहीं-कहीं इस श्लोक की दूसरी पंक्ति में 'परापवादशस्येभ्यो' शब्द भी मिलता है, तब इसका अर्थ 'परनिन्दा' हो जाएगा। तब अर्थ होगा——'यदि एक ही कर्म से सारे संसार को वश में करना चाहते हो तो परनिन्दा करना बंद कर दो। मन को वश में करना और परनिन्दा न करना, दोनों ही उचित लगते हैं। ऐसा करके आपके हाथों में वशीकरण मंत्र की शक्ति आ सकती है।

प्रस्तावसदृशं वाक्यं प्रभावसदृशं प्रियम्।
आत्मशक्तिसमं कोपं यो जानाति स पंडितः।।

जो प्रस्ताव के योग्य बातों को, प्रभाव के अनुसार प्रिय कार्य को या वचन को और अपनी शक्ति के अनुसार क्रोध करना जानता है, वही पंडित है।। 15।।

आचार्य चाणक्य ने उपरोक्त श्लोक में बताया है कि प्रसंग अनुकूल बात करनी चाहिए, यदि प्रसन्नता का मौका है तो उसमें प्रसन्नता की बातें होनी चाहिए। इसी तरह अन्य योग्यताओं का वर्णन किया है।

एक एव पदार्थस्तु त्रिधा भवति वीक्षितः।
कुणपः कामिनी मांसं योगिभिः कामिभिः श्वभिः।।

एक ही वस्तु को तीन दृष्टियों से देखा जा सकता है। जैसे सुंदर स्त्री को योगी मृतक के रूप में देखता है, कामुक व्यक्ति उसे

कामिनी के रूप में देखता है और कुत्ते के द्वारा वह मांस के रूप में देखी जाती है।। 16।।

भाव यह है कि नारी का सौंदर्य दृष्टि भ्रममात्र है। प्रत्येक व्यक्ति हर चीज को अपनी-अपनी दृष्टि से देखता है।

सुसिद्धमौषधं धर्मं गृहच्छिद्रं च मैथुनम्।
कुभुक्तं कुश्रुतं चैव मतिमान्न प्रकाशयेत्।।

बुद्धिमान वही है जो अति सिद्ध दवा को, धर्म के रहस्य को, घर के दोष को, मैथुन अर्थात संभोग की बात को, स्वादहीन भोजन को और अतिकष्टकारी मृत्यु को किसी को न बताए। भाव यह है कि कुछ बातें ऐसी होती हैं, जिन्हें समाज में छिपाकर ही रखना चाहिए।। 17।।

आचार्य चाणक्य ने प्रस्तुत श्लोक के माध्यम से इस बात को बताया है कि छुपाने योग्य बातों को न छुपाकर मनुष्य समाज में हंसी का पात्र बनता है, कुछ मामलों में नुकसान उठाता है।

तावन्मौनेन नीयन्ते कोकिलैश्चैव वासराः।
यावत्सर्वजनानन्द दायिनी वाक् न प्रवर्तते।।

कोयल की वाणी तभी तक मौन रहती है, जब तक कि सभी जनों को आनन्द देने वाली वाणी प्रारम्भ नहीं हो जाती।। 18।।

भाव यह है कि आम्रमंजरी के फूलने के बाद ही कोयल कूकती है क्योंकि आम्रमंजरी की भीनी सुगंध से आनन्दित होकर वसंत ऋतु में लोगों की मीठी वाणी भी चहकने लगती है।

धर्मं धनं च धान्यं च गुरौर्वचनमौषधम्।
सुगृहीतं च कर्त्तव्यमन्यथा तु न जीवति।।

धर्म, धन, अन्न, गुरु का उपदेश और गुणकारी औषधि का संग्रह अच्छी प्रकार से करना चाहिए। अन्यथा जीवन का

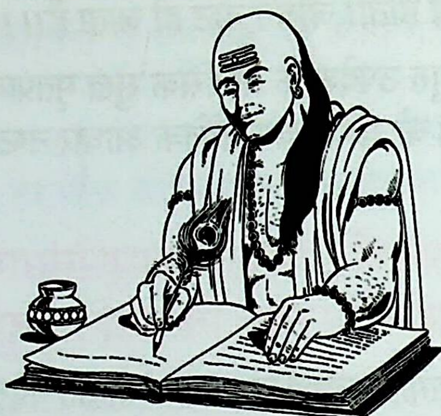
कल्याण नहीं होता। जीवन नष्ट हो जाता है।।19।।

बिना धर्म और गुरु उपदेश के मानसिक सुख मृतप्राय है और बिना अन्न और धन के जीवन का भौतिक आधार नष्ट हो जाता है।

त्यज दुर्जनसंसर्गं भज साधुसमागमम्।
कुरु पुण्यमहोरात्रं स्मर नित्यमनित्यताम्।।

दुष्टों का साथ त्यागो, सज्जनों का साथ करो, रात-दिन धर्म का आचरण करो और प्रतिदिन इस अनित्य संसार में नित्य परमात्मा के विषय में विचार करो, उसे स्मरण करो।।20।।

सद्संगति और धर्माचरण करते हुए नित्य परमात्मा को याद करना चाहिए और इस संसार की नश्वरता को समझना चाहिए। सद्संगति के सामने दुष्टों का साथ कुछ भी नहीं है।



॥ अथ पंचदश अध्याय ॥

यस्य चित्तं द्रवीभूतं कृपया सर्वजन्तुषु।
तस्य ज्ञानेन मोक्षेण किं जटाभस्मलेपनैः॥

जिसका हृदय सभी प्राणियों पर दया करने हेतु द्रवित हो उठता है, उसे ज्ञान, मोक्ष, जटा और भस्म लगाने की क्या जरूरत है ?॥1॥

भाव यह है कि हमें सभी प्राणियों पर दया करनी चाहिए, उनसे स्नेह करना चाहिए। जो ऐसा करता है, उसका स्थान परमात्मा के समकक्ष हो जाता है।

एकमेवाक्षरं यस्तु गुरुः शिष्यं प्रबोधयेत्।
पृथिव्यां नास्ति तद् द्रव्यं यद्दत्वा चाऽनृणी भवेत्॥

जो गुरु एक ही अक्षर अपने शिष्य को पढ़ा देता है, उसके लिए इस पृथ्वी पर कोई अन्य चीज ऐसी महत्त्वपूर्ण नहीं है, जिसे वह गुरु को देकर उऋण हो सके॥2॥

भाव यह है कि जो गुरु अपने शिष्य को एक अक्षर का यह उपदेश दे देता है—'तत्त्वमसि' अर्थात 'तुम ब्रह्म हो।' आत्मा तुम्हारा ही रूप है, अंश है। यह शरीर तो नाशवान है, अनित्य

है, जबकि ब्रह्म 'नित्य' है, अजन्मा है, सदैव से है और अनन्त काल तक रहेगा। उसका कोई ओर-छोर नहीं, तो यह उपदेश पाने के बाद शिष्य के लिए किसी अन्य उपदेश को पाने की आवश्यकता नहीं रह जाती।

खलानां कण्टकानां च द्विविधैव प्रतिक्रिया।
उपानान्मुखभंगो वा दूरतो वा विसर्जनम्।।

दुष्टों और कांटों से बचने के दो ही उपाय हैं, जूतों से उन्हें कुचल डालना व उनसे दूर रहना।।3।।

भाव यह है कि दुष्ट और कांटे सदैव कष्ट ही पहुंचाने वाले होते हैं। इनसे बचकर रहना ही ठीक रहता है। यदि इनसे सामना हो ही जाए तो इन्हें जूतों से कुचल डालना चाहिए।

कुचैलिनं दंतमलोपसृष्टं, बह्वाशिनं निष्ठुरभाषिणं च।
सूर्योदये चास्तमिते शयानं, विमुंचति श्रीर्यदि चक्रपाणिः।।

गंदे वस्त्र धारण करने वाले, दांतों पर मैल जमाए रखने वाले, अत्यधिक भोजन करने वाले, कठोर वचन बोलने वाले, सूर्योदय से सूर्यास्त तक सोने वाले को, चाहे वह साक्षात विष्णु ही क्यों न हो, लक्ष्मी त्याग देती है।।4।।

ऐसे व्यक्ति आलसी, कामचोर, पेटू, क्रोधी और निकम्मे होते हैं। ऐसे लोगों के पास धन-सम्पति कभी नहीं आती। यदि आती भी है तो वह शीघ्र ही नष्ट हो जाती है, परंतु जो व्यक्ति स्वच्छ रहेगा, कर्मठ होगा, वही धन-वैभव जुटाने में कामयाब होता है।

त्यजन्ति मित्राणि धनैर्विहीनं, दाराश्च भृत्याश्च सुहृज्जनाश्च।
तं चार्थवन्तं पुनराश्रयंते, अर्थो हि लोके पुरुषस्य बंधुः।।

निर्धन होने पर मनुष्य को उसके मित्र, स्त्री, नौकर और

हितैषी जन छोड़कर चले जाते हैं, परंतु पुनः धन आने पर फिर से उसी का आश्रय लेते हैं।।5।।

इसका भाव यह है कि आदमी के जीवन में धन का बड़ा महत्त्व है। धन ही भाई है, धन ही मित्र है और धन ही स्त्री है।

अन्यायोपार्जितं द्रव्यं दशवर्षाणि तिष्ठति।
प्राप्ते चैकादशे वर्षे समूलं तद् विनश्यति।।

अन्याय से उपार्जित किया गया धन दस वर्ष तक रहता है। ग्यारहवें वर्ष के आते ही जड़ सहित नष्ट हो जाता है।।6।।

अन्यायपूर्वक धन कमाने के लिए व्यक्ति को कभी प्रयास नहीं करना चाहिए।

अयुक्तं स्वामिनो युक्तं युक्तं नीचस्य दूषणम्।
अमृतं राहवे मृत्युर्विषं शंकर भूषणम्।।

समर्थ व्यक्ति द्वारा किया गया गलत कार्य भी अच्छा कहलाता है और नीच व्यक्ति के द्वारा किया गया अच्छा कार्य भी गलत कहलाता है। ठीक वैसे, जैसे अमरता प्रदान करने वाला अमृत राहु के लिए मृत्यु का कारण बना और प्राणघातक विष भी शंकर के लिए भूषण हो गया।। 7।।

भाव यह है कि समर्थ व्यक्ति को दोष नहीं दिया जा सकता। तुलसीदासजी ने भी कहा है—'समरथ को नाहिं दोष गुसाईं।'

तद् भोजनं यद् द्विजभुक्तशेषं, तत्सौहृदं यत् क्रियते परस्मिन्।
स प्राज्ञता या न करोति पापं, दम्भं विना यः क्रियते स धर्मः।।

भोजन वही है जो ब्राह्मण के करने के बाद बचा रहता है, भलाई वही है जो दूसरों के लिए की जाती है, बुद्धिमान वही है जो पाप नहीं करता और बिना पाखण्ड तथा दिखावे के जो कार्य किया जाता है, वह धर्म है।।8।।

भाव यह है कि ब्राह्मण को भोजन कराने के बाद ही भोजन करना चाहिए और बिना किसी प्रकार के दिखावे के जो परोपकार किया जाता है, उसे ही सच्चा धर्म मानना चाहिए।

मणिर्लुण्ठति पादाग्रे काचः शिरसि धार्यते।
क्रयविक्रयवेलायां काचः काचो मणिर्मणिः॥

मणि पैरों में पड़ी हो और कांच सिर पर धारण किया गया हो, परंतु क्रय-विक्रय करते समय अर्थात मोल-भाव करते समय मणि मणि ही रहती है और कांच कांच ही रहता है॥9॥

भाव यह है कि समय अथवा भाग्य के कारण विद्वान व्यक्ति का भले ही सम्मान न हो, पर जब मूल्यांकन का समय आता है तो विद्वान की विद्वता को कोई चुनौती नहीं दे सकता। योग्य व्यक्ति की अलग ही पहचान होती है और अयोग्य व्यक्ति की जग-हंसाई ही होती है।

अनन्तशास्त्रं बहुलाश्च विद्याः अल्पश्च कालो बहुविघ्नता च।
यत्सारभूतं तदुपासनीयं, हंसो यथा क्षीरमिवाम्बुमध्यात्॥

शास्त्रों का अंत नहीं है, विद्याएं बहुत हैं, जीवन छोटा है, विघ्न-बाधाएं अनेक हैं। अतः जो सार तत्त्व है, उसे ही ग्रहण करना चाहिए, जैसे हंस जल के बीच से दूध को पी लेता है॥10॥

मानव जीवन बहुत छोटा है और इस संसार में ज्ञान अपरिमित है। पूरे जीवन में सारे ज्ञान को नहीं पाया जा सकता इसलिए ज्ञान के उस सार तत्त्व को ग्रहण करना चाहिए जो सत्य है।

दूरागतं पथि श्रान्तं वृथा गृहमागतम्।
अनर्चयित्वा यो भुंक्ते स वै चाण्डाल उच्यते॥

अचानक दूर से आए थके-हारे पथिक से बिना पूछे ही

जो स्वयं भोजन कर लेता है, वह चाण्डाल होता है।।11।।

भाव यह है कि अतिथि को भारतीय संस्कृति में देवता समान माना गया है।

जो व्यक्ति अतिथि से पूछे बिना अर्थात उसका आदर-सत्कार किए बिना ही भोजन कर लेता है, वह किसी नीच से कम नहीं।

पठन्ति चतुरो वेदान् धर्मशास्त्राण्यनेकशः।
आत्मानं नैव जानन्ति दर्वी पाकरसं यथा।।

बुद्धिहीन ब्राह्मण वैसे तो चारों वेदों और अनेक शास्त्रों का अध्ययन करते हैं, पर आत्मज्ञान को वे नहीं समझ पाते या उसे समझने का प्रयास ही नहीं करते। ऐसे ब्राह्मण उस कलछी की तरह होते हैं, जो तमाम व्यंजनों में तो चलती है, पर रसोई के रस को नहीं जानती।।12।।

भाव यह है कि वेद-शास्त्रों के अध्ययन की सार्थकता तभी है, जब उनके मर्म को समझा जाए और आत्मज्ञान को जाना जाए कि आत्मा क्या है? उसका परमात्मा से क्या संबंध है? जब तक यह नहीं जाना जाएगा, तब तक किसी भी प्रकार का ज्ञान व्यर्थ है।

धन्या द्विजमयी नौका विपरीता भवार्णते।
तरन्त्यधोगताः सर्वे उपरिस्थाः पतन्त्यधः।।

इस संसार सागर को पार करने के लिए ब्राह्मण रूपी नौका प्रशंसा के योग्य है, जो उल्टी दिशा की ओर बहती है। इस नाव में ऊपर बैठने वाले पार नहीं होते, किंतु नीचे बैठने वाले पार हो जाते हैं। अतः सदा नम्रता का ही व्यवहार करना चाहिए।। 13।।

इस श्लोक का भाव यही है कि जो लोग ब्राह्मणों के प्रति नम्र रहते हैं, उनकी सेवा करते हैं, उनका उद्धार हो जाता है, किन्तु जो ब्राह्मण के सम्मुख अपने बड़प्पन का रोब झाड़ते हैं, अपना अहंकार प्रदर्शित करते हैं, उनका उद्धार कभी नहीं हो पाता।

अयममृतनिधानं नायकोऽप्यपौषधीनां,
कमलासहजातः कान्तियुक्तोऽपि चन्द्रः।
भवति विगतरश्मिर्मण्डलं प्राप्य भानोः,
परसदननिविष्टः को लघुत्वं न याति।।

पराए घर में रहने से कौन छोटा नहीं हो जाता? यह देखो अमृत का खजाना, औषधियों का स्वामी, शरीर और शोभा से युक्त यह चन्द्रमा, जब सूर्य के प्रभा–मंडल में आता है तो प्रकाशहीन हो जाता है।।14।।

दूसरों की पराधीनता में जाने से आदमी का स्वाभिमान नष्ट हो जाता है।

अलिरयं नलिनीदलमध्यगः कमलिनीमकरन्दमदालसः।
विधिवशात् परदेशमुपागतः कुटजपुष्परसं बहु मन्यते।।

कुमुदिनी के पत्तों के मध्य विकसित उसके पराग कणों से मस्त हुआ भौंरा, जब भाग्यवश किसी दूसरी जगह पर जाता है तो वहां मिलने वाले कटसरैया के फूलों के रस को भी अधिक महत्त्व देने लगता है।।15।।

इस पद का भाव यह है कि परदेश सुखकर नहीं होता।

परदेश में भौंरे की भांति आदमी को अनेक कष्टों को झेलना पड़ता है। वहां जो मिल जाए, उसी पर संतोष करना पड़ता है।

पीतः क्रुद्धेन तातश्चरणतलहतो वल्लभो येन रोषाद्
आबाल्याद्विप्रवर्यैः स्ववदनविवरे धार्यते वैरिणी मे।
गेहं मे छेदयन्ति प्रतिदिवसमुमाकान्तपूजानिमित्तं
तस्माति खिन्ना सदाहं द्विजकुलनिलयं नाथ! युक्तं त्यजामि॥

लक्ष्मी भगवान विष्णु से कहती है 'हे नाथ! ब्राह्मण वंश के आगस्त्य ऋषि ने मेरे पिता (समुद्र) को क्रोध से पी लिया, विप्रवर भृगु ने मेरे परमप्रिय स्वामी (श्री विष्णु) की छाती में लात मारी, बड़े-बड़े ब्राह्मण विद्वानों ने बचपन से लेकर वृद्धावस्था तक मेरी शत्रु सरस्वती को अपनी वाणी में धारण किया और ये (ब्राह्मण) उमापति (शंकर) की पूजा के लिए प्रतिदिन हमारा घर (श्रीफल पत्र आदि) तोड़ते हैं। हे नाथ! इन्हीं कारणों से सदैव दुःखी मैं आपके साथ रहते हुए भी ब्राह्मण के घर को छोड़ देती हूं।'॥ 16॥

प्रस्तुत पंक्तियों में लक्ष्मी का संवाद विष्णु के साथ कराया गया है और उस कारण को बताया गया है, जिसकी वजह से लक्ष्मी ब्राह्मणों के घर में नहीं रहतीं।

ब्राह्मणों से मानो उनका वैर है क्योंकि ब्राह्मणों (अगस्त्य ऋषि) ने समुद्र (जिससे कि उनकी उत्पत्ति हुई) को पी डाला, (भृगु ऋषि ने) भगवान विष्णु (उनके पति) को लात मारी और उनकी सौत सरस्वती को गले लगाया है, अर्थात विद्या ही सबसे बड़ा धन है।

बंधनानि खुल सन्ति बहूनि प्रेमरज्जुदृढ बंधमन्यत्।
दारुभेदनिपुणोऽपि षडंघ्रिर निष्क्रियो भवति पंकजकोशे॥

यह निश्चय है कि बंधन अनेक हैं, परंतु प्रेम का बंधन निराला है। देखो, लकड़ी को छेदने में समर्थ भौंरा कमल की पंखुड़ियों में उलझकर क्रियाहीन हो जाता है, अर्थात प्रेम रस से मस्त

हुआ भौंरा कमल की पंखुड़ियों को नष्ट करने में समर्थ होते हुए भी उसमें छेद नहीं कर पाता।।17।।

इस श्लोक में राजनीति के पंडित आचार्य चाणक्य ने दर्शाया है कि प्रेम का बंधन अटूट है। उसे तोड़ना अत्यन्त कठिन है।

जो प्राणी इस संसार के माया-मोह में फंस जाता है वह भौंरे की तरह शीघ्र ही नष्ट हो जाता है। जिस प्रकार भौंरा कमल के मोह में फंसकर उसकी पंखुड़ियों में कैद होकर अपना जीवन गंवा देता है।

छिन्नोऽपि चन्दनतरुर्न जहाति गन्धम्,
वृद्धोऽपि वारणपतिर्न जहाति लीलाम्।
यन्त्रार्पितो मधुरतां न जहाति चेक्षुः,
क्षीणोऽपि न त्यजति शीलगुणान् कुलीनः।।

चन्दन का कटा हुआ वृक्ष भी सुगंध नहीं छोड़ता, बूढ़ा होने पर भी गजराज क्रीड़ा नहीं छोड़ता, ईख कोल्हू में पिसने के बाद भी अपनी मिठास नहीं छोड़ती और कुलीन व्यक्ति दरिद्र होने पर भी सुशीलता आदि गुणों को नहीं छोड़ता।।18।।

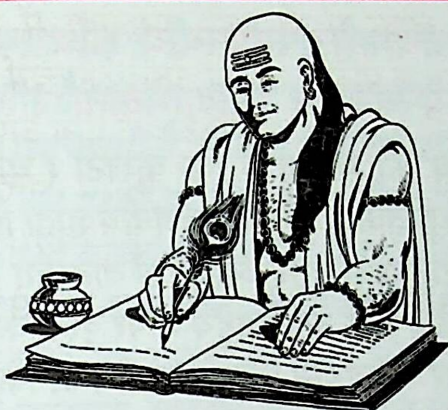
भाव यह है कि जन्म से ही जो शाश्वत गुण मनुष्य को प्राप्त होते हैं, वे अंत तक साथ नहीं छोड़ते।

उर्व्यां कोऽपि महीधरो लघुतरो दोर्भ्यां धृतो लीलया,
तेन त्वं दिवि भूतले च सततं गोवर्धनो गीयसे।
त्वां त्रैलोक्यधरं वहामि कुचयोरग्रेण तद्गण्यते,
किं या केशव भाषणेन बहुना पुण्यैर्यशो लभ्यते।।

श्रीकृष्ण को उलाहना देती हुई गोपी कहती है कि हे कन्हैया! तुमने एक बार गोवर्धन नामक पर्वत को क्या उठा लिया

कि तुम इस लोक में ही नहीं, परलोक में भी गोवर्धनधारी के रूप में प्रसिद्ध हो गए, परंतु आश्चर्य तो इस बात का है कि मैं तीनों लोकों के स्वामी अर्थात तुम्हें अपने हृदय पर धारण किए रहती हूं और रात-दिन मैं तुम्हारी चिन्ता करती हूं, पर मुझे कोई त्रिलोकधारी जैसी पदवी नहीं देता।।19।।

भाव यह है कि यश-सम्मान तो पुण्य और भाग्य से ही प्राप्त होता है।



॥ अथ षोडश अध्याय ॥

न ध्यातं पदमीश्वरस्य विधिवत्संसारविच्छित्तये,
स्वर्गद्वारकपाटपाटनपटुर्धर्मोऽपि नोपार्जितः।
नारीपीनपयोधरोरुयुगलं स्वप्नेऽपि नालिंगितं,
मातुः केवलमेव यौवनवनच्छेदे कुठारा वयम्॥

संसार से उद्धार के लिए जिन लोगों ने विधिपूर्वक परमेश्वर का ध्यान नहीं किया, स्वर्ग में समर्थ धर्म का उपार्जन नहीं किया, स्वप्न में भी किसी सुंदर युवती के कठोर स्तनों और जंघाओं के आलिंगन का भोग नहीं किया, ऐसे व्यक्ति का जन्म माता के यौवन रूपी वन को काटने वाली कुल्हाड़ी के समान है॥1॥

भाव यह है कि जिन लोगों ने न तो इस भौतिक संसार का ही उपयोग किया और न परलोक को सुधारने के लिए ईश्वरोपासना तथा धर्म का ही संग्रह किया, ऐसे लोगों को जन्म देना माता के लिए व्यर्थ ही हुआ।

सफलता तो तभी मिलती है, जब इस लोक में सुख उठाते हुए परलोक-सुधार के लिए धर्माचरण किया जाए।

जल्पन्ति सार्धमन्येन पश्यन्त्यन्यं सविभ्रमाः।
हृदये चिन्तयन्त्यन्यं न स्त्रीणामेकतो रतिः॥

आचार्य चाणक्य का मानना है कि कुलटा (चरित्रहीन) स्त्रियों का प्रेम एकान्तिक न होकर बहुजनीय होता है। उनका कहना है कि कुलटा स्त्रियां पराए व्यक्ति से बातचीत करती हैं, कटाक्षपूर्वक देखती हैं और अपने हृदय में पर पुरुष का चिन्तन करती हैं, इस प्रकार चरित्रहीन स्त्रियों का प्रेम अनेक से होता है॥2॥

आचार्य चाणक्य ने यहां पर कुलटा स्त्रियों के हाव-भाव और चरित्र का स्पष्ट वर्णन किया है।

यो मोहान्मन्यते मूढो रक्तेयं मयि कामिनी।
स तस्या वशगो भूत्वा नृत्येत् क्रीडा शकुन्तवत्॥

जो मूर्ख व्यक्ति माया के मोह में वशीभूत होकर यह सोचता है कि अमुक स्त्री उस पर आसक्त है, वह उस स्त्री के वश में होकर खेल की चिड़िया की भांति इधर-से-उधर नाचता फिरता है॥3॥

आचार्य चाणक्य का मत है कि प्रायः स्त्रियां विलासिनी होती हैं जो पुरुषों को अपनी ओर आकृष्ट करके उन्हें मनमाना नाच नचाती हैं।

कोऽर्थान् प्राप्य न गर्वितो विषयिणः कन्यापदोऽस्तं गताः,
स्त्रीभिः कस्य न खण्डितं भुवि मनः को नाम राज्ञां प्रियः।
कः कालस्य न गोचरत्वमगमत् कोऽर्थी गतो गौरवम्।
को वा दुर्जन वागुरासु पतितः क्षेमेण यातः पथि॥

आचार्य चाणक्य का कहना है कि इस संसार में कोई भाग्यशाली व्यक्ति ही मोह-माया से छूटकर मोक्ष प्राप्त करता है।

उनका कहना है—'धन-वैभव को प्राप्त करके ऐसा कौन है जो इस संसार में अहंकारी न हुआ हो, ऐसा कौन-सा व्यभिचारी है, जिसके पापों को परमात्मा ने नष्ट न कर दिया हो, इस पृथ्वी पर ऐसा कौन धीर पुरुष है, जिसका मन स्त्रियों के प्रति व्याकुल न हुआ हो, ऐसा कौन पुरुष है, जिसे मृत्यु ने न दबोचा हो, ऐसा कौन-सा भिखारी है जिसे बड़प्पन मिला हो, ऐसा कौन-सा दुष्ट है जो अपने संपूर्ण दुर्गुणों के साथ इस संसार से कल्याण-पथ पर अग्रसर हुआ हो।'॥4॥

भाव यह है कि इस नश्वर संसार की मोह-माया से छूटना अत्यन्त ही दुष्कर कार्य है।

न निर्मितः केन न दृष्टपूर्वः न श्रूयते हेममयः कुरंगः।
तथापि तृष्णा रघुनन्दनस्य विनाशकाले विपरीतबुद्धिः॥

स्वर्ण मृग न तो ब्रह्मा ने रचा था और न किसी और ने उसे बनाया था, न पहले कभी देखा गया था, न कभी सुना गया था, तब भी श्रीराम की उसे पाने (मारीच का मायावी रूप कंचन मृग) की इच्छा हुई, अर्थात सीता के कहने पर वे उसे पाने के लिए दौड़ पड़े। किसी ने ठीक ही कहा है—'विनाश काले विपरीत बुद्धि।' जब विनाश काल आता है, तब बुद्धि नष्ट हो जाती है॥5॥

आचार्य चाणक्य ने प्रस्तुत श्लोक के माध्यम से बताया है कि विनाश आने से पहले बुद्धि उलटी जाती है।

गुणैरुत्तमतां यान्ति नोच्चैरासनसंस्थिताः।
प्रासादशिखरस्थोऽपि काकः किं गरुडायते॥

आचार्य चाणक्य का मत है कि व्यक्ति अपने गुणों से ही ऊपर उठता है। ऊंचे स्थान पर बैठ जाने से ही ऊंचा नहीं हो जाता।

उदाहरण के लिए महल की चोटी पर बैठ जाने से कौआ क्या गरुड़ बन जाएगा?॥6॥

कहने का अभिप्राय यह है कि व्यक्ति अपने गुणों से ही महान बनता है और सभी जगह प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। केवल स्थान से व्यक्ति की प्रतिष्ठा नहीं बढ़ती। बल्कि पद पर किसी गुणहीन व्यक्ति के बैठ जाने से उस पद की गरिमा ही गिरती है।

गुनाः सर्वत्र पूज्यन्ते न महत्योऽपि सम्पदः।
पूर्णेन्दु किं तथा वन्द्यो निष्कलंको यथा कृशः॥

गुणों की सभी जगह पूजा होती है, न कि बड़ी सम्पत्तियों की। क्या पूर्णिमा के चांद को उसी प्रकार से नमन नहीं करते, जैसे द्वितीया के चांद को?॥7॥

भाव यह है कि चन्द्रमा किसी भी रूप में रहे विद्वान व्यक्ति के गुण की भांति उसे हर स्थिति में नमन करते हैं।

पर-प्रोक्तगुणो यस्तु निर्गुणोऽपि गुणी भवेत्।
इन्द्रोऽपि लघुतां याति स्वयं प्रख्यापितैर्गुणः॥

दूसरों के द्वारा गुणों का बखान करने पर बिना गुण वाला व्यक्ति भी गुणी कहलाता है, किन्तु अपने मुख से अपनी बड़ाई करने पर इन्द्र भी छोटा हो जाता है॥8॥

आत्म प्रशंसा से कोई व्यक्ति बड़ा नहीं कहलाता, अपितु जब दूसरों के द्वारा प्रशंसा की जाती है, तभी वह गुणी कहलाता है। 'अपने मुंह मियां मिट्ठू' नहीं बनना चाहिए। जिन गुणों की प्रशंसा दूसरे करते हैं, वे ही गुण सच्चे होते हैं।

विवेकिनमनुप्राप्ता गुना यान्ति मनोज्ञताम्।
सुतरां रत्नमाभाति चामीकरनियोजितम्॥

जो व्यक्ति विवेकशील है और विचार करके ही कोई

कार्य सम्पन्न करता है, ऐसे व्यक्ति के गुण श्रेष्ठ विचारों के मेल से और भी सुंदर हो जाते हैं। जैसे सोने में जड़ा हुआ रत्न स्वयं ही अत्यन्त शोभा को प्राप्त हो जाता है।।9।।

भाव यह है कि गुण गुणी को ही शोभा पहुंचाते हैं, अविवेकी व्यक्ति को नहीं। उसके पास गुण भी दुर्गुण बन जाते हैं।

गुणैः सर्वज्ञतुल्योऽपि सीदत्येको निराश्रयः।
अनर्घ्यमपि माणिक्यं हेमाश्रयमपेक्षते।।

जो व्यक्ति किसी गुणी व्यक्ति का आश्रित नहीं है, वह व्यक्ति ईश्वरीय गुणों से युक्त होने पर भी कष्ट झेलता है, जैसे अनमोल श्रेष्ठ मणि को भी सुवर्ण की जरूरत होती है। अर्थात सोने में जड़े जाने के उपरान्त ही उसकी शोभा में चार चांद लग जाते हैं।।10।।

भाव यह है कि किसी का आश्रय प्राप्त करके गुणी व्यक्ति अपने गुणों को समाज में स्थापित करने का अवसर प्राप्त कर लेता है, तभी उसे उचित यश और प्रसिद्धि प्राप्त होती है।

अतिक्लेशेन ये चार्था धर्मस्यातिक्रमेण तु।
शत्रूणां प्रणिपातेन ते ह्यर्था मा भवन्तु मे।।

जो धन अति कष्ट से प्राप्त हो, धर्म का त्याग करने से प्राप्त हो, शत्रुओं के सामने झुकने अथवा समर्पण करने से प्राप्त हो, ऐसा धन हमें नहीं चाहिए।।11।।

भाव यह है कि जो धन सत्कर्मों से प्राप्त हो, अच्छे आचरण से प्राप्त हो, बिना किसी दबाव के प्राप्त हो, वही धन श्रेष्ठ होता है और स्वाभिमान के लायक होता है।

आत्मसम्मान को नष्ट करने वाले धन की अपेक्षा धन का न ही होना अच्छा है।

किं तया क्रियते लक्ष्म्या या वधूरिव केवला।
या तु वेश्येव सा मान्या पथिकैरपि भुज्यते।।

उस लक्ष्मी (धन) से क्या लाभ जो घर की कुलवधू के समान केवल स्वामी के उपभोग में ही आए। उसे तो उस वेश्या के समान होना चाहिए, जिसका उपयोग सब कर सकें।।12।।

इस श्लोक में आचार्य चाणक्य कहते हैं कि सम्पत्ति, धन-वैभव वही अच्छा रहता है, जिसका उपयोग सभी के हित के लिए होता हो। यदि धन पर कुंडली मारकर एक ही व्यक्ति बैठा रहे और केवल अपने ही स्वार्थ के लिए खर्च करे तो ऐसे धन से कोई लाभ नहीं है।

धनेषु जीवितव्येषु स्त्रीषु चाहारकर्मसु।
अतृप्तः प्राणिनः सर्वेयाता यास्यन्ति यान्ति च।।

इस संसार में आज तक किसी को भी प्राप्त धन से, इस जीवन से, स्त्रियों से और खान-पान से पूर्ण तृप्ति कभी नहीं मिली। पहले भी, अब भी और आगे भी इन चीजों से संतोष होने वाला नहीं है। इनका जितना अधिक उपभोग किया जाता है, उतनी ही तृष्णा बढ़ती जाती है।। 13।।

मनुष्य की इच्छाएं अनन्त हैं। वे कभी पूरी नहीं होतीं। एक इच्छा के पूरी होते ही दूसरी सामने आकर खड़ी हो जाती है। तात्पर्य यह कि मनुष्य अपने आप से कभी संतुष्ट नहीं होता है। अतः संतोष ही सबसे बड़ा धन है।

क्षीयन्ते सर्वदानानि यज्ञहोमबलिक्रियाः।
न क्षीयते पात्रदानमभयं सर्वदेहिनाम्।।

जीवन की समाप्ति के साथ सभी दान, यज्ञ, होम, बलिक्रिया आदि नष्ट हो जाते हैं, किन्तु श्रेष्ठ सुपात्र को दिया गया

दान और सभी प्राणियों पर अभयदान अर्थात दयादान कभी नष्ट नहीं होता। उसका फल अमर होता है, सनातन होता है।। 14।।

अतः सुपात्र को ही दान देना चाहिए और सभी जीवों पर दया करनी चाहिए। उनकी हत्या नहीं करनी चाहिए। ये दोनों दान कभी नष्ट नहीं होते इसीलिए इन्हें सर्वश्रेष्ठ दान कहा गया है।

तृणं लघु तृणात्तूलं तूलादपि च याचकः।
वायुना किं न नीतोऽसौ मामयं याचयिष्यति।।

तिनका हल्का होता है, तिनके से भी हल्की रुई होती है, रुई से भी हल्का याचक (भिखारी) होता है, तब वायु इसे उड़ाकर क्यों नहीं ले जाती? सम्भवतः इस भय से कि कहीं यह उससे ही भीख न मांगने लगे।। 15।।

मांगने वाले से सभी डरते हैं कि वह उनसे कुछ मांग न बैठे क्योंकि देना कोई नहीं चाहता। वैसे भी, याचक अर्थात भिखारी निंदा के योग्य ही है।

वरं प्राणपरित्यागो मानभंगे जीवनात्।
प्राणत्यागे क्षणं दुःखं मानभंगे दिने दिने।।

अपमान कराके जीने से तो अच्छा मर जाना है क्योंकि प्राणों के त्यागने से केवल एक ही बार कष्ट होगा, पर अपमानित होकर जीवित रहने से जीवनपर्यन्त दुःख होगा।। 16।।

भाव यह है कि सम्मानित जीवन ही जीने के योग्य होता है। अपमानित होकर जीने से तो मरना बेहतर है।

प्रियवाक्यप्रदानेन सर्वे तुष्यन्ति जन्तवः।
तस्मात्तदेव वक्तव्यं वचने का दरिद्रता।।

मधुर वचन सभी को संतुष्ट करते हैं इसलिए सदैव

मृदुभाषी होना चाहिए। मधुर वचन बोलने में कैसी दरिद्रता? जो व्यक्ति मीठा बोलता है, उससे सभी प्रसन्न रहते हैं।।17।।

आचार्य चाणक्य ने प्रस्तुत श्लोक के माध्यम से बताया है कि मधुर भाषण में सम्मोहन शक्ति होती है। मधुर भाषण सभी पर प्रभाव डालता है।

संसार कटु विषवृक्षस्य द्वे फले अमृतोपमे।
सुभाषितं च सुस्वादु संगति सुजने जने।।

इस संसार रूपी विष-वृक्ष पर दो अमृत के समान मीठे फल लगते हैं। एक मधुर और दूसरा सत्संगति। मधुर बोलने और अच्छे लोगों की संगति करने से विष-वृक्ष का प्रभाव नष्ट हो जाता है और उसका कल्याण हो जाता है।।18।।

आचार्य चाणक्य ने उपरोक्त श्लोक के माध्यम से संसार को कटु वृक्ष कहा है। इसे विष वृक्ष भी कहते हैं। इस कटु वृक्ष के दो फल कड़वे न होकर अत्यंत मीठे हैं, अमृत के समान गुणकारी हैं—मधुर वचन और सज्जनों की संगति। मनुष्य को चाहिए कि सदा मीठा ही बोलें।

जन्म-जन्मन्यभ्यस्तं दानमध्ययनं तपः।
तेनैवाऽभ्यासयोगेन तदेवाभ्यस्यते पुनः।।

अनेक जन्मों से किया गया दान, अध्ययन और तप का अभ्यास, अगले जन्म में भी उसी अभ्यास के कारण मनुष्य को सत्कर्मों की ओर बढ़ाता है, अर्थात वह दूसरे जन्म में भी शास्त्रों के अध्ययन को दान देने की प्रवृत्ति को और तपस्यारत जीवन को दूसरों के पास तक पहुंचाता है।।19।।

भाव यह है कि हमारे इस जन्म के शुभ कर्म अगले

जन्म में भी हमें शुभ कर्मों की ओर ले जाने वाले होंगे।

पुस्तकेषु च या विद्या परहस्तेषु यद्धनम।
उत्पन्नेषु च कार्येषु न सा विद्या न तद्धनम्।।

जो विद्या पुस्तकों में लिखी है और कंठस्थ नहीं है तथा जो धन दूसरे के हाथों में गया है, ये दोनों आवश्यकता के समय काम नहीं आते, अर्थात पुस्तकों में लिखी विद्या और दूसरे के हाथों में गए धन पर भरोसा नहीं करना चाहिए।।20।।

भाव यह है कि विद्या को सदैव कंठस्थ करना चाहिए और धन को सदैव अपने हाथों में रखना चाहिए ताकि वक्त या जरूरत पड़ने पर काम आ सके। अपना अनुभव और अपना धन ही वक्त पर काम आता है।



॥ अथ सप्तदश अध्याय ॥

पुस्तकप्रत्ययाधीतं नाधीतं गुरुसन्निधौ।
सभामध्ये न शोभन्ते जारगर्भा इव स्त्रियः॥

जिस प्रकार पर–पुरुष से गर्भ धारण करने वाली स्त्री समाज में शोभा नहीं पाती, उसी प्रकार गुरु के चरणों में बैठकर विद्या प्राप्त न करके इधर–उधर से पुस्तकें पढ़कर जो ज्ञान प्राप्त करते हैं, वे विद्वानों की सभा में शोभा नहीं पाते क्योंकि उनका ज्ञान अधूरा होता है। उसमें परिपक्वता नहीं होती। अधूरे ज्ञान के कारण वे शीघ्र ही उपहास के पात्र बन जाते हैं॥ 1॥

आचार्य चाणक्य ने प्रस्तुत श्लोक के माध्यम से बताया है कि पुस्तक से पढ़कर शुद्ध उच्चारण नहीं सीखा जा सकता। इसी प्रकार व्यभिचार कर्म से गर्भधारण किया गया शिशु पिता का नाम नहीं पा सकता।

कृते प्रतिकृतं कुर्याद्हिंसने प्रतिहिंसनम्।
तत्र दोषो न पतति दुष्टे दुष्टं समाचरेत्॥

उपकार का बदला उपकार से देना चाहिए और हिंसा वाले के साथ हिंसा करनी चाहिए। वहां दोष नहीं लगता

क्योंकि दुष्ट के साथ दुष्टता का व्यवहार करना ही ठीक रहता है।।2।।

आचार्य चाणक्य ने प्रस्तुत श्लोक में कहा है कि यूं तो सबके साथ प्रीतिपूर्वक व्यवहार करना चाहिए पर दुष्ट के साथ प्रीतिपूर्वक व्यवहार करना उसकी दुष्टता को बढ़ावा देना होता है।

यद्दूरं यद्दुराराध्यं यच्च दूरे व्यवस्थितम्।
तत्सर्वं तपसा साध्यं तपो हि दुरतिक्रमम्।।

तप में असीम शक्ति है। तप के द्वारा सभी कुछ प्राप्त किया जा सकता है। जो दूर है, बहुत अधिक दूर है, जो बहुत कठिनता से प्राप्त होने वाला है और बहुत दूरी पर स्थित है, ऐसे साध्य को तपस्या के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। तप के द्वारा तो ईश्वर को भी प्राप्त किया जा सकता है। अतः जीवन में साधना का विशेष महत्त्व है। इसके द्वारा ही मनोवांछित सिद्धि प्राप्त की जा सकती है।।3।।

आचार्य चाणक्य ने प्रस्तुत श्लोक में बताया है कि तप से कठिन-से-कठिन कार्य सहज बन जाते हैं। तप से मृत्यु पर विजय पाई जा सकती है। तप का अर्थ है विपत्तियां आने पर भी धर्म को न छोड़ना।

लोभश्चेदगुणेन किं पिशुनता यद्यस्ति किं पातकैः,
सत्यं चेत्तपसा च किं शुचि मनो यद्यस्ति तीर्थेन किम्।
सौजन्यं यदि किं गुणैः सुमहिमा यद्यस्ति किं मण्डनैः,
सद्विद्या यदि किं धनैरपयशो यद्यस्ति किं मृत्युना।।

लोभ सबसे बड़ा अवगुण है, पर निन्दा सबसे बड़ा पाप है, सत्य सबसे बड़ा तप है और मन की पवित्रता सभी तीर्थों में जाने

से उत्तम है। सज्जनता सबसे बड़ा गुण है, यश सबसे उत्तम अलंकार (आभूषण) है, उत्तम विद्या सबसे श्रेष्ठ धन है और अपयश मृत्यु के समान सर्वाधिक कष्टकारक है।।4।।

आचार्य चाणक्य ने प्रस्तुत श्लोक में लोभ को दुर्गुणों की खान बताया है। यदि लोभ है तो अन्य दुर्गण की क्या आवश्यकता? यदि चुगलखोरी का स्वभाव है तो और पातकों का क्या काम? यदि जीवन में सत्य है तो तप करने की क्या आवश्यकता? मन की शुद्धि से तीर्थ की, प्रेम है तो गुणों की, यश है तो आभूषणों की, श्रेष्ठ विद्या है तो धन की क्या आवश्यकता? इसी तरह अपयश है तो मृत्य से क्या?

पिता रत्नाकरो यस्य लक्ष्मीर्यस्य सहोदरा।
शंखो भिक्षाटनं कुर्यान्नाऽदत्तमुपतिष्ठते।।

जिसका पिता समुद्र है, जिसकी बहन लक्ष्मी है, ऐसा होते हुए भी शंख भिक्षा मांगता है।।5।।

लक्ष्मी और शंख का जन्म समुद्र से ही माना जाता है। प्रायः देखा जाता है कि साधु लोग शंख बजाकर गृहस्थियों के घर से भिक्षा मांगते हैं। इसी से कहा गया है कि शंख भिक्षा मांगता है। भाव यह है कि एक ही कोख से जन्म लेने वालों का भाग्य अलग-अलग होता है।

अशक्तस्तु भवेत्साधुर्ब्रह्मचारी च निर्धनः।
व्याधिष्ठो देवभक्तश्च वृद्धा नारी पतिव्रता।।

शक्तिहीन मनुष्य साधु होता है, धनहीन व्यक्ति ब्रह्मचारी होता है, रोगी व्यक्ति देवभक्त और बूढ़ी स्त्री पतिव्रता होती है।।6।।

भाव यह है कि ये सभी लोग असमर्थ रहने के कारण से ही ऐसे हैं। अतः जो व्यक्ति प्रयास नहीं करता, परिश्रम नहीं करता, वह आलसी और निकम्मा होकर अपने को ऐसा बना

लेता है। परिस्थितियों से घबराकर मुंह मोड़ लेना कायर मनुष्य का काम है।

व्यक्ति को तो चाहिए कि वह अपना कार्य पूरे मनोयोग से करे। सच्चे अर्थों में वही धर्म भी है।

नाऽन्नोदकसमं दानं न तिथिर्द्वादशी समा।
न गायत्र्याः परो मंत्रो न मातुपरं दैवतम्॥

अन्नदान व जलदान से बड़ा कोई अन्य दान नहीं, द्वादशी तिथि के समान कोई अन्य तिथि नहीं, गायत्री मंत्र के समान कोई अन्य मंत्र नहीं और माता के समान कोई दूसरा देवता नहीं॥ 7॥

द्वादशी तिथि पर किए गए पुण्य कर्मों का फल उत्तम होता है, गायत्री मंत्र श्रेष्ठ फल देने वाला है और मां का आशीर्वाद सभी इच्छाओं की पूर्ति करने वाला है। मां के दूध का ऋण उतारना असंभव है। आचार्य चाणक्य के इस कथन को ध्यान में रखकर चलने वाला मनुष्य सदैव अच्छा फल प्राप्त करता है।

तक्षकस्य विषं दंते मक्षिकायास्तु मस्तके।
वृश्चिकस्य विषं पुच्छे सर्वांगे दुर्जने विषम्॥

तक्षक (एक सांप का नाम) के दांत में विष होता है, मक्खी के सिर में विष होता है, बिच्छू की पूंछ में विष होता है, परन्तु दुष्ट व्यक्ति के पूरे शरीर अर्थात सारे अंगों में विष होता है॥ 8॥

भाव यह है कि दुर्जन व्यक्ति हर प्रकार से सज्जनों को कष्ट पहुंचाने वाला होता है। उसका साथ किसी रूप में भी सुखकर नहीं है। बुद्धिमान व्यक्ति सदैव ऐसे दुष्ट लोगों से बचकर चलते हैं क्योंकि दुर्जन व्यक्ति के तो सारे अंगों में विष भरा होता है।

पत्युराज्ञां विना नारी ह्युपोष्य व्रतचारिणी।
आयुष्यं हरते भर्तुः सा नारी नरकं व्रजेत्।।

पति की आज्ञा के बिना जो स्त्री उपवास और व्रत करती है, वह अपने पति की आयु को कम करने वाली होती है, अर्थात पति को नष्ट करके सीधे नर्क में जाती है।।9।।

अतः पति की आज्ञा लेकर ही व्रत-उपवास आदि करने चाहिए, तभी इन कर्मों का उत्तम फल प्राप्त होता है।

न दानैः शुद्ध्यते नारी नोपवासशतैरपि।
न तीर्थसेवया तद्वद् भर्तुः पादोदकैर्यथा।।

स्त्री न तो दान से, न सैकड़ों उपवास-व्रतों से, न तीर्थाटन करने से उस प्रकार से शुद्ध हो पाती है, जैसे वह अपने पति के चरण-जल से शुद्ध होती है।।10।।

अतः पति की चरण-सेवा ही स्त्री के कल्याण के लिए उत्तम है। उसका पति ही उसके लिए परमेश्वर है।

पाद्यशेषं पीतशेषं सन्ध्याशेषं तथैव च।
श्वानमूत्रसमं तोयं पीत्वा चान्द्रायणं चरेत्।।

पैरों के धोने से बचा हुआ, पीने के बाद पात्र में बचा हुआ और सन्ध्या से बचा हुआ जल कुत्ते के मूत्र के समान है। उसे पीने के बाद ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य चन्द्रायण व्रत को करें, तभी वे पवित्र हो सकते हैं।। 11।।

आचार्य चाणक्य कहते हैं कि किसी भी कार्य से बचे हुए जल को नहीं पीना चाहिए। वह जल अशुद्ध माना जाता है। उनका मानना है कि पैरों के धोने के बाद बचा हुआ जल, पीने के बाद बचा हुआ जल तथा सन्ध्या से बचे हुए जल को जो व्यक्ति पीता है वह चन्द्रायण व्रत करने के उपरान्त

ही पवित्र हो सकता है। अतः मनुष्य को उपयुक्त बातों पर अवश्य ध्यान देना चाहिए।

दानेन पाणिर्न तु कंकणेन, स्नानेनशुद्धिर्न तु चन्दनेन।
मानेन तृप्तिर्न तु भोजनेन, ज्ञानेन मुक्तिर्न तु मण्डनेन॥

हाथ की शोभा दान से होती है, न कि कंगन पहनने से, शरीर की शुद्धि स्नान से होती है, न कि चंदन लगाने से, बड़ों की तृप्ति सम्मान करने से होती है, न कि भोजन कराने से, शरीर की मुक्ति ज्ञान से होती है, न कि शरीर काश्रृंगार करने से॥ 12॥

भाव यह है कि बाह्याडम्बरों से शरीर को शुद्ध नहीं किया जा सकता। दान देने, स्वच्छ जल में स्नान करने, बड़ों का सम्मान करने और उचित ज्ञान प्राप्ति के उपरान्त ही मनुष्य का जीवन सफल, पवित्र और मोक्ष को प्राप्त होता है। अतः मनुष्य को इन बाह्य आडम्बरों की तरफ ध्यान नहीं देना चाहिए।

नापितस्य गृहे क्षौरं पाषाणे गंधलेपनम्।
आत्मरूपं जले पश्यन् शक्रस्यापि श्रियं हरेत्॥

नाई के घर पर जाकर केश कटवाना, पत्थर पर चंदन आदि सुगंधित द्रव्य लगाना, जल में अपने चेहरे की परछाई देखना, यह इतना अशुभ माना जाता है कि यदि देवराज इन्द्र भी स्वयं इसे करने लगें तो उसके पास से लक्ष्मी अर्थात धन-सम्पदा नष्ट हो जाती है॥ 13॥

आचार्य का मत है कि नाई के घर जाकर बाल कटवाने से, पत्थर की देव-प्रतिमाओं पर चंदन लगाने से और अपनी परछाई को पानी में देखने से आदमी की प्रतिष्ठा नष्ट हो जाती है और वह शोभाहीन हो जाता है।

सद्यः प्रज्ञाहरा तुण्डी सद्यः प्रज्ञाकरी वचा।
सद्यः शक्तिहरा नारी सद्यः शक्तिकरं पयः।।

'तुण्डी' (कुंदरू) को खाने से बुद्धि तत्काल नष्ट हो जाती है, 'वच' के सेवन से बुद्धि को शीघ्र विकास मिलता है, स्त्री के साथ समागम करने से शक्ति तत्काल नष्ट हो जाती है और दूध के प्रयोग से खोई हुई ताकत तत्काल वापस लौट आती है।। 14।।

आचार्य चाणक्य ने उपरोक्त श्लोक में आयुर्वेद नीति का ज्ञान दिया है। उनके अनुसार नारी व्यक्ति को दुर्बल बनाती है, अतः उससे बचना चाहिए।

बुद्धि और ताकत के लिए 'वच' और 'दूध' का प्रयोग करना हितकर रहता है, क्योंकि ये दोनों तुरंत असर करने वाले हैं।

परोपकरणं येषां जागर्ति हृदये सताम्।
नश्यन्ति विपदस्तेषां सम्पदः स्युः पदे पदे।। 15।।

जिन सज्जनों के हृदय में परोपकार की भावना जाग्रत रहती है, उनकी तमाम विपत्तियां अपने आप दूर हो जाती हैं और उन्हें पग-पग पर सम्पत्ति एवं धन-ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है।। 15।।

यहां चाणक्य के कहने का अर्थ यह है कि परोपकार ही जीवन है। अपना पेट तो पशु भी भर लेता है। यदि पेट पालना ही जीवन का उद्देश्य है तो मानवता क्या हुई? स्वार्थी मनुष्य का जीवन निरर्थक है।

यदि रामा यदि च रमा यद्यपि तनयो विनयगुणोपेतः।
यदि तनये तनयोत्पत्तिः सुरवरनगरे किमाधिक्यम्।।

यदि स्त्री सुंदर हो और घर में लक्ष्मी हो, पुत्र विनम्रता आदि

गुणों से युक्त हो और पुत्र का पुत्र घर में हो तो इससे बढ़कर सुख तो इन्द्रलोक में भी नहीं। ऐसी स्थिति में स्वर्ग घर में ही है।। 16।।

आचार्य चाणक्य ने प्रस्तुत श्लोक में बताया है कि उत्तम पत्नी, आवश्यक धन-धान्य, सुशील पुत्र और पोते आंगन में खेल रहे हों तो यही सब स्वर्गिक आनंद है।

स्वर्ग कहां है? स्वर्ग आकाश में नहीं है, स्वर्ग इसी भूतल पर है। आचार्य का सुंदर पत्नी से आशय सिर्फ रूप की सुंदरता से नहीं है बल्कि गुण की सुंदरता से भी है। गुण की सुंदरता महान बताई गई है। पत्नी यदि पति धर्म निभाने वाली हो तो तभी पुरुष के लिए पृथ्वी स्वर्ग समान है। इसी प्रकार पुत्र आदि आज्ञाकारी हो तभी पुत्र का होना सार्थक है अन्यथा इस पृथ्वी स्वर्ग समान है, इसी प्रकार पुत्र आदि आज्ञाकारी हो तभी पुत्र का होना सार्थक है अन्यथा यह पृथ्वी स्वर्ग के बजाय नर्क समान बन जाती है।

आहरनिद्रामय मैथुननानि, समानि चैतानि नृणा पशूनाम।
ज्ञानपं नराणामधिको विशेषो ज्ञानेन हीनाः पशुभिः समानाः।।

भोजन, नींद, डर, संभोग आदि, ये वृत्ति (गुण) मनुष्य और पशुओं में समान रूप से पाई जाती हैं। पशुओं की अपेक्षा मनुष्यों में केवल ज्ञान (बुद्धि) एक विशेष गुण, उसे अलग से प्राप्त है। अतः ज्ञान के बिना मनुष्य पशु के समान ही होता है।। 17।।

आचार्य चाणक्य ने प्रस्तुत श्लोक में मनुष्य के पशु से अलग होने का जो गुण बताया है वह है उसकी ज्ञानशक्ति। ज्ञान से मनुष्य उन्नत होता है। ज्ञान से मनुष्य मोक्ष प्राप्त करता है। ज्ञान द्वारा ही मनुष्य के नैतिक गुणों का विकास होता है। नैतिक गुण है सत्य, न्याय, धर्म, हिंसा, परोपकार, दान, विनयशीलता।

जिस मनुष्य ने अपने में इन नैतिक गुणों को विकसित कर लिया, उसने अपने ज्ञान चक्षु से अच्छा-बुरा समझना सीख लिया, उसका ही मनुष्य रूप में जीवन लेना सफल रहा, अन्यथा यदि मनुष्य रूप में जन्म लेकर खाने, सोने, डरने और संतान पैदा करने के लिए वह जन्मा है तो पशु समान है।

दानार्थिनो मधुकरा यदि कर्णतालैर्
दूरीकृताः करिवरेण मदान्धबुद्ध्या।
तस्यैव गण्डयुगमण्डनहानिरेषा,
भृङ्गाः पुनर्विकचपद्मवने वसन्ति॥

अपने मद से अंधा हुआ गजराज (हाथी) यदि अपनी मंदबुद्धि के कारण, अपने गन्डस्थल (मस्तक) पर बहते मद को पीने के इच्छुक भौरों को, अपने कानों को फड़फड़ाकर भगा देता है तो इसमें भौरों की क्या हानि हुई? अर्थात कोई हानि नहीं हुई। वहां से हटकर वे खिले हुए कमलों का सहारा ले लेते हैं और उन्हें वहां पराग रस भी प्राप्त हो जाता है, परंतु भौरों के न रहने से हाथी के गंडस्थल की शोभा नष्ट हो जाती है॥ 18॥

यदि कोई रसिक विद्वान किसी धनी व्यक्ति के पास कोई आस लेकर जाए और वह उसे अपमानित करके भगा दे तो इसमें विद्वान का तो कुछ नहीं बिगड़ता, अपितु उस धनी की शोभा ही नष्ट हो जाती है। गुणी व्यक्ति के लिए तो सारा संसार पड़ा है, पर धनी व्यक्ति के घर विद्वान पधारे, यह कोई जरूरी नहीं।

राजा वेश्या यमो ह्यग्निस्तकरो बालयाचको।
परदुःखं न जानन्ति अष्टमो ग्रामकंटकाः॥

राजा, वेश्या, यमराज, अग्नि, चोर, बालक, भिक्षु और

आठों गांव का कांटा, ये दूसरे के दु:ख को नहीं जानते।। 19।।

आचार्य चाणक्य ने उपरोक्त श्लोक के माध्यम से बताया है कि अग्नि जड़ पदार्थ है, वह तो किसी के दुख-सुख को जान ही नहीं सकता।

शेष चेतन भी दूसरों के दुख को न जानकर अपने ही घर को भरने का प्रयत्न करते हैं। राजा जनता को पीड़ित करके भी अपना कोष भरना चाहता है। वेश्या को धन चाहिए, चाहे प्रेमी कहीं से लाकर दे। यमराज प्राणियों को समय आने पर दूसरी योनियों में भेज देता है चाहे परिवार वालों को कितना ही कष्ट हों।

चोर को अपनी चोरी मतलब है, वह यह नहीं सोचता कि इस धन को चुराने से उसके स्वामी की क्या दशा होगी? बाल हठ प्रसिद्धि ही है, वह रोने लगता है तो इस बात को नहीं सोचता कि किसका नुकसान होता है।

याचक भी अपना ही स्वार्थ सोचता है और ग्राम कण्टक का तो निर्वाह ही ग्रामवासियों को पीड़ा देकर होता है। वह इस बात का आभास नहीं करता कि अपने स्वार्थ के लिए वह लोगों को कष्ट दे रहा है।

अधः पश्यसि किं बाले! पतितं तव किं भुवि।
रे रे मूर्ख! न जानासि गतं तारुण्यमौकित्कम्।।

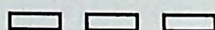
नीचे की ओर देखती एक अधेड़ वृद्ध स्त्री से कोई पूछता है—'हे बाले! तुम नीचे क्या देख रही हो ? पृथ्वी पर तुम्हारा क्या गिर गया है ?' तब वह स्त्री कहती है—'रे मूर्ख! तुम नहीं जानते, मेरा युवावस्था रूपी मोती नीचे गिरकर नष्ट हो गया है।'।।20।।

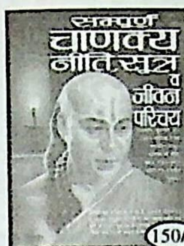
यौवन का मोती एक बार नष्ट हो जाए, अर्थात जवानी एक बार चली जाए तो फिर लौटकर नहीं आती। यह देखकर अपने यौवन को सत्कर्मों में लगाना चाहिए।

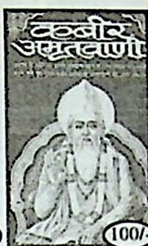
व्यालाश्रयापि विफलापि सकण्टकापि,
वक्रापि पंकिलभवापि दुरासदाऽपि।
गन्धेन बन्धुरसि केतकि सर्वजन्तोर्
एको गुणः खुलु निहन्ति समस्त दोषान्॥

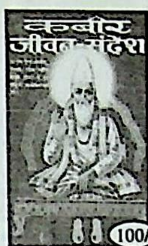
हे केतकी! यद्यपि तू सांपों का घर है, फलहीन है, कांटेदार है, टेढ़ी भी है, कीचड़ में ही पैदा होती है, बड़ी मुश्किल से तू मिलती भी है, तब भी सुगंध रूपी गुण से तुम सभी को प्रिय लगती हो। वाकई एक ही गुण सभी दोषों को नष्ट कर देता है॥21॥

भाव यह है कि आदमी में चाहे कितने ही अवगुण क्यों न हों, पर यदि उसका एक ही गुण सभी दुर्गुणों पर भारी पड़ता है तो उसके सारे दोषों को अनदेखा किया जा सकता है।













धार्मिक आराधना व स्तुति की पुस्तकें व महान संतों की अमरवाणी

- ☐ असली प्राचीन रावण संहिता (सजिल्द) 1000/-
- ☐ चाणक्य नीति, सूत्र व जीवन परिचय 150/-
- ☐ मनुस्मृति 200/-
- ☐ सम्पूर्ण व्रत त्योहार 80/-
- ☐ गृहस्थ गीता 80/-
- ☐ हनुमान भजनमाला 100/-
- ☐ अष्टावक्र गीता 120/-
- ☐ भजन अमृतवाणी 80/-
- ☐ भजन सागर 100/-
- ☐ श्री राधा-कृष्ण लीला रहस्य 100/-
- ☐ सूरदास के लोकप्रिय पद 100/-
- ☐ मीरा के लोकप्रिय पद 80/-
- ☐ रहीम दोहावली 80/-
- ☐ तुलसीदास के लोकप्रिय दोहे 80/-
- ☐ चाणक्य कथा 60/-
- ☐ चाणक्य सूत्र 60/-
- ☐ चाणक्य नीति (दो कलर में) 80/-
- ☐ विदुर नीति 80/-
- ☐ भर्तृहरि शतक 80/-
- ☐ सिखों के दस गुरु 100/-
- ☐ कबीर अमृतवाणी 100/-
- ☐ कबीर जीवन-संदेश 100/-
- ☐ कबीर की रमैनी 60/-
- ☐ कबीर साखी 100/-
- ☐ क्या कहते हैं संत कबीर साहेब 50/-
- ☐ अनुराग सागर 100/-
- ☐ कबीर बीजक 100/-
- ☐ कबीर सबद सागर 100/-
- ☐ श्रीकृष्ण और उनकी नीति 60/-
- ☐ महान लोगों के अनमोल वचन 95/-
- ☐ महापुरुषों की अमर सूक्तियां 80/-
- ☐ महाराजा अग्रसेन 100/-
- ☐ बाल रामायण (सचित्र) 100/-
- ☐ बाल महाभारत (सचित्र) 100/-
- ☐ हमारे पूज्य तीर्थ स्थल 120/-
- ☐ जागरण की भेंटें 100/-
- ☐ श्रीमद् भगवद् गीता (सजिल्द) (रंगीन चित्रों सहित) 120/-
- ☐ श्रीदुर्गा सप्तसती (सजिल्द) (दो कलर में) 120/-
- ☐ नवदुर्गा साधना (सजिल्द) (दो कलर में) 100/-
- ☐ संतों की वाणी 60/-
- ☐ विहारी सतसई 110/-
- ☐ मेघदूत (कालीदास) 80/-
- ☐ अभिज्ञान शाकुन्तलम (कालीदास) 80/-
- ☐ भजन संग्रह 30/-
- ☐ अनुभव के मोती 30/-
- ☐ प्रेम सागर 30/-
- ☐ सुखी जीवन के 1001 टिप्स 30/-
- ☐ संतों के अनमोल वचन 30/-
- ☐ शिरड़ी सांई दर्शन 30/-
- ☐ चलो सालासर धाम (रंगीन चित्रों सहित) 50/-
- ☐ हमारे धार्मिक रीति-रिवाज 110/-
- ☐ जागरण की भेंटें 100/-
- ☐ दृष्टांत सागर 250/-
- ☐ सद्गुरु महिमा (सजिल्द) 50/-
- ☐ क्या हैं सोलह संस्कार 30/-
- ☐ सोलह संस्कार पूजन विधान 30/-
- ☐ हनुमान ज्योतिष 30/-
- ☐ दृष्टांत सागर 30/-
- ☐ शिव उपासना 30/-
- ☐ गणेश उपासना 30/-
- ☐ हनुमान उपासना 30/-
- ☐ भैरव उपासना 30/-
- ☐ दुर्गा उपासना 30/-
- ☐ गायत्री उपासना 30/-
- ☐ काली उपासना 30/-
- ☐ शनि उपासना 30/-
- ☐ सूर्य उपासना 30/-
- ☐ सरस्वती उपासना 30/-
- ☐ लक्ष्मी उपासना 30/-
- ☐ बगुलामुखी मंत्र साधना 30/-
- ☐ कामाख्या तंत्र के गोपनीय रहस्य 30/-
- ☐ पृथ्वी में छिपा धन कैसे पाएं? 30/-
- ☐ दान और उपवास द्वारा रोग निवारण 30/-
- ☐ क्या कहा था संतों ने 30/-
- ☐ रत्न, रंग रुद्राक्ष द्वारा भाग्य बदलें 30/-
- ☐ रावण संहिता 30/-
- ☐ हिन्दुओं के व्रत-त्योहार 30/-
- ☐ महापुरुषों की अनमोल सूक्तियां 30/-

अपने निकट के पुस्तक विक्रेता, ए.एच. व्हीलर एंड कंपनी के सभी रेलवे बुक स्टॉल व रोडवेज बुक स्टॉलों से खरीदें न मिलने पर 300/- या अधिक मूल्य की पुस्तकें मनीऑर्डर भेजकर घर बैठे प्राप्त करें। डाक व्यय माफ।

राजा पॉकेट बुक्स 330/1, बुराड़ी, दिल्ली-84. Ph. : 27611410, 27612036



विद्यार्थियों के लिए सरल भाषा में लिखी गई अत्यंत उपयोगी पुस्तकें! (मूल्य 40/-)

- ☐ गुरुनानक देव
- ☐ स्वामी विवेकानन्द
- ☐ महर्षि वाल्मीकि
- ☐ भगवान महावीर
- ☐ रामकृष्ण परमहंस
- ☐ भगवान स्वामिनारायण
- ☐ आचार्य विनोवा भावे
- ☐ मदर टेरेसा
- ☐ स्वामी श्रद्धानंद
- ☐ स्वामी रामतीर्थ
- ☐ महर्षि अरविंद
- ☐ स्वामी दयानन्द सरस्वती
- ☐ सांई बाबा के चमत्कार
- ☐ गुरु गोविन्द सिंह
- ☐ भगवान परशुराम
- ☐ संत तुकाराम
- ☐ संत नामदेव
- ☐ मीरा
- ☐ सूरदास
- ☐ तुलसीदास
- ☐ कवीर
- ☐ विहारी
- ☐ भारतेन्दु हरिश्चंद्र
- ☐ निराला
- ☐ कालीदास
- ☐ मैथलीशरण गुप्त
- ☐ रामधारी सिंह दिनकर
- ☐ रसखान
- ☐ रहीम
- ☐ अभिमन्यु
- ☐ एकलव्य
- ☐ भगवान शिव
- ☐ अटल भक्त ध्रुव
- ☐ श्रवण कुमार
- ☐ भक्त प्रह्लाद
- ☐ भगवान विष्णु
- ☐ भगवान श्रीराम
- ☐ ब्रह्मा
- ☐ गंगा मैया
- ☐ हनुमान
- ☐ सुदामा
- ☐ महाबली कर्ण
- ☐ मां दुर्गा
- ☐ श्री गणेश
- ☐ नेल्सन मंडेला
- ☐ टैगोर की जीवन यात्रा
- ☐ सिकंदर
- ☐ हिटलर
- ☐ नेपोलियन बोनापार्ट
- ☐ विल क्लिंटन
- ☐ मोनिका स्टोरी
- ☐ टेनिस परी सानिया मिर्जा
- ☐ स्टील किंग लक्ष्मी मित्तल
- ☐ मोहम्मद अली जिन्ना
- ☐ बाबू जगजीवन राम
- ☐ मौलाना अबुल कलाम
- ☐ अब्राहम लिंकन
- ☐ डॉक्टर भीमराव अम्वेडकर
- ☐ दलितों के मसीहा कांशीराम
- ☐ बहुजन समाज की ज्योति मायावती
- ☐ क्रांतिदूत विरसामुंडा
- ☐ क्या कहते हैं दलितों के मसीहा
- ☐ महात्मा ज्योतिवा फुले
- ☐ भगवान गौतम बुद्ध
- ☐ दलितों की आन-बान शान वहन मायावती (काव्य में)
- ☐ छत्रपति शाहूजी महाराज
- ☐ रमाबाई अम्वेडकर
- ☐ भीमराव अम्वेडकर जीवन दर्शन 40/-
- ☐ संत रविदास 50/-
- ☐ विश्व की महान वीरांगना वहन मायावती 50/-
- ☐ अछूत कौन और कैसे? 50/-
- ☐ मानवता के उद्धारक भगवान गौतम बुद्ध 50/-
- ☐ सत्य, अहिंसा के प्रेरक भगवान बुद्ध 50/-
- ☐ नारी शक्ति की प्रतीक वहन मायावती 50/-
- ☐ मान्यवर कांशीराम 50/-
- ☐ कल्पना चावला 50/-
- ☐ सचिन तेंदुलकर 50/-
- ☐ डॉ. हरिवंश राय बच्चन 75/-
- ☐ बराक ओबामा 80/-
- ☐ अटल विहारी वाजपेयी 110/-
- ☐ सोनिया गांधी 80/-
- ☐ लौह पुरुष आडवाणी 80/-
- ☐ महाराजा अग्रसेन 100/-
- ☐ अमिताभ बच्चन 110/-
- ☐ कीर्तिपुंज अटल 150/-
- ☐ विहारी सतसई 110/-
- ☐ भारत के नोबेल पुरस्कार विजेता 100/-
- ☐ भारत रत्न से अलंकृत महान प्रतिभाएं 100/-
- ☐ भारत के परमवीर चक्र विजेता 100/-
- ☐ भारत के राष्ट्रपति 100/-
- ☐ भारत की वीरांगनाएं 100/-
- ☐ भारत के महान वैज्ञानिक 100/-
- ☐ 1857 के क्रांतिकारी 100/-
- ☐ भारत के प्रधानमंत्री 100/-
- ☐ जहां-जहां चरण पड़े गौतम के तहां तहां भयो उजारा 110/-
- ☐ सांईं बुल्लेशाह (दो कलर में) 150/-
- ☐ जीवन जीना सीखें संत भक्तों के जीवन से 150/-
- ☐ बाबा फरीद 110/-

अपने निकट के पुस्तक विक्रेता, ए.एच. व्हीलर एंड कंपनी के सभी रेलवे बुक स्टॉल व रोडवेज बुक स्टॉलों से खरीदें न मिलने पर 500/- या अधिक मूल्य की पुस्तकें मनीऑर्डर भेजकर घर बैठे प्राप्त करें। डाक व्यय माफ।

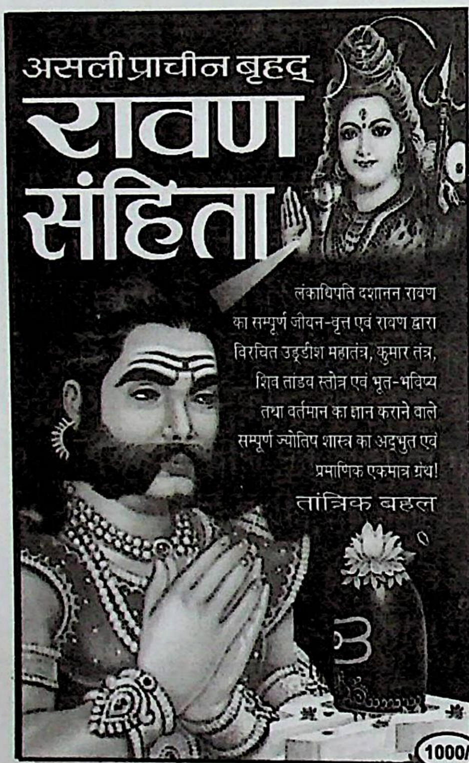
राजा पॉकेट बुक्स 330/1, बुराड़ी, दिल्ली-84. Ph.: 27611410. 27612036

तंत्र-मंत्र-यंत्र के प्राचीन अनुभवी लेखक

तांत्रिक बहल

द्वारा लिखित अत्यंत प्रामाणिक पुस्तक!





रावण संहिता नामक इस महाग्रंथ को **आठ खंडों** में विभक्त किया गया है। 'रावण संहिता' के **प्रथम खंड** में रावण के पूर्वजों व रावण के जन्म से लेकर उनकी मृत्यु तक के सभी पहलुओं पर विस्तारपूर्वक प्रकाश डाला गया है। साथ ही रावण की मृत्यु के समय उनकी अंतिम इच्छा क्या थी जैसे गूढ़ तथ्यों की भी पूर्ण जानकारी दी गई है। पुस्तक के **द्वितीय खंड** में ग्रह-राशिनुसार जातक के द्वादश भावों के फलादेश का पूर्ण विवरण दिया गया है। **तृतीय खंड** में राशि-नक्षत्रानुसार फलादेश की विस्तार से जानकारी दी गई है। **चतुर्थ खंड** में रावण द्वारा विरचित गुप्त तंत्र का उल्लेख किया गया है साथ ही दस महाविधाएं और उनकी साधनाएं तथा रावण की दस बुराइयों का उल्लेख किया गया है। **पंचम खंड** में रावण विरचित प्रसिद्ध रचना उड्डीश तंत्र का समावेश किया गया है। **षष्ठम खंड** में शिव-पार्वती संवाद पर आधारित क्रियोड्डीश तंत्र का उल्लेख किया गया है। साथ ही महामृत्युंजय उपासना पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। **सप्तम खंड** में रावण द्वारा विरचित कुमार तंत्र की व्याख्या की गई है। पुस्तक के **अष्ठम खंड** में रावण द्वारा रचित प्रसिद्ध ग्रंथ 'अर्कप्रकाश' के दसों शतकों की विस्तारपूर्वक विवेचना की गई है। यह ग्रंथ शरीर के समस्त रोगों के उपचार घर आधारित है। पुस्तक के अंत में रावण विरचित शिव तांडव स्तोत्र को दिया गया है। कुल मिलाकर यह पुस्तक गागर में सागर भर देने वाली शैली के अनुसार लिखी गई है जिसमें रावण से सम्बंधित सभी तथ्यों व ग्रंथों की पूर्ण जानकारी प्राप्त होती है। अगर आपने इस ग्रंथ को नहीं पढ़ा है तो अवश्य पढ़ें।

अपने निकट के पुस्तक विक्रेता, ए.एच. व्हीलर एंड कंपनी के सभी रेलवे बुक स्टॉल व रोडवेज बुक स्टॉलों से खरीदें न मिलने पर 1000/- मूल्य का मनीऑर्डर भेजकर घर बैठे प्राप्त करें। डाक व्यय माफ।

राजा पॉकेट बुक्स 330/1, बुराड़ी, दिल्ली-84. Ph. : 23251092, 27611410

राजनीति व कूटनीति के प्रकांड पंडित चाणक्य को कौटिल्य के नाम से भी जाना जाता है। उन्होंने अपनी कुशाग्र बुद्धि और नीतियों द्वारा विश्व-विजेता बनने का स्वप्न देखने वाले सिकंदर को तो धूल चटाई ही, साथ ही अपने अपमान का बदला लेने के लिए शक्तिशाली मगध सम्राट महानंद का भी सर्वनाश किया। उन्होंने अपनी सूझ-बूझ से सम्पूर्ण भारत को एकता के सूत्र में पिरोया तथा अपने शिष्य चंद्रगुप्त को भारत का सम्राट घोषित किया। भारतीय इतिहास में चाणक्य का नाम सदैव अमर रहेगा। प्रस्तुत पुस्तक में सुंदर व सरल भाषा में चाणक्य की नीतियों को प्रस्तुत किया गया है।

राजा पॉकेट बुक्स

